नई दिल्ली
रविवार, 28 जून, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-36 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

ईंधन और उर्वरक की कीमतें आसमान छूते रहने पर कृषि कर्ज का अंतहीन चक्र खत्म नहीं होने वाला 3
क्या नेतन्याहू के कारनामों से बच पाएगा इसराइल? 6

असुर कलाओं पर संकट 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

रोजगार बाजार में जान फूंकना नहीं आसान

भारत के बेरोजगारी संकट में ऊपर से दिखने वाली दिक्कतों से कहीं ज्यादा गहरे पेच हैं जिसे नीतिगत फैसलों ने और उलझाया

अजित रानाडे

मुख्य आर्थिक सलाहकार वी. अनंत नागेश्वरन ने बड़ी साफगोई से वह बात कह दी जिसे तमाम माता-पिता, छात्र और नीति-निर्माता सुनना नहीं चाहतेः कि सॉफ्टवेयर डिग्री और एमबीए से जुड़ा पुराना आकर्षण अब खत्म हो रहा है। वैश्वीकरण के दौर का फॉर्मूला सीधा और सरल था। इंजीनियरिंग की डिग्री लो, कोडिंग सीखो, अगर संभव हो तो एमबीए करो, और सीधे व्हाइट-कॉलर तरक्की की राह पर बढ़ जाओ। लेकिन यह फॉर्मूला अब भरोसेमंद नहीं रहा।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) सामान्य बौद्धिक कार्यों के अर्थशास्त्र को बदल रहा है। एआई टूल्स की मदद से अब एक अनुभवी कर्मचारी अकेले वह काम कर सकता है जिसके लिए पहले दर्जनों फ्रेशर्स की जरूरत होती थी। इसका पहला असर शायद बड़े पैमाने पर छंटनी के रूप में न दिखे, बल्कि यह शुरुआती प्रवेश द्वारों के चुपचाप बंद होने के रूप में सामने आ सकता है। आईटी कंपनियों द्वारा हाल ही में नियुक्तियों में की गई कटौती इसका सीधा प्रमाण है।

लेकिन उनकी इस चेतावनी को इंजीनियरिंग या प्रबंधन शिक्षा के खात्मे के तौर पर नहीं पढ़ा जाना चाहिए। भारत की इंजीनियरों की जरूरत कम नहीं हुई; हां, अब अलग तरह के इंजीनियर चाहिए। उदाहरण के लिए, सिविल इंजीनियरिंग भारत के भविष्य के केन्द्र में बनी रहेगी। एक ऐसा देश जो अब भी सड़कों, पुलों, बंदरगाहों, रेलवे, जल प्रणालियों, आवासों, लॉजिस्टिक्स पार्कों और जलवायु-अनुकूल शहरों का निर्माण कर रहा है, वह यह नहीं कह सकता कि इंजीनियरिंग खत्म हो गई है। बल्कि, अच्छे इंजीनियरों की मांग और बढ़ेगी।

मूल सवाल यह है कि इंजीनियरिंग किस तरह की हो? कल का सिविल इंजीनियर कंक्रीट और सर्वेक्षण के केवल पुराने फॉर्मूले नहीं सीख सकता। उसे जलवायु जोखिम, जल संकट, शहरी बाढ़, हरित सामग्री, जीआईएस मैपिंग, प्रोजेक्ट फाइनेंस, खरीद और लाइफ साइकिल मेंटेनेंस को समझना होगा। मैकेनिकल और इलेक्ट्रिकल इंजीनियरों को रोबोटिक्स, प्रिसिजन मैन्युफैक्चरिंग, स्टोरेज, ग्रिड और रिन्यूएबल इंटीग्रेशन को समझना होगा। कंप्यूटर इंजीनियरों को रूटीन कोडिंग से आगे बढ़कर सिस्टम थिंकिंग, डेटा आर्किटेक्चर, साइबर सिक्योरिटी और एआई के एप्लिकेशंस की ओर बढ़ना होगा। यही बात एमबीए पर भी लागू होती है। भारत की विश्लेषणात्मक और प्रबंधकीय कौशल वाले लोगों की जरूरत घटी नहीं। लेकिन उसे उन जगहों पर लोग चाहिए जहां वे आज शायद ही कभी पाए जाते हैं। हर जिले को ऐसे लोगों की जरूरत है जो डेटा का विश्लेषण कर सकें, निवेश योजनाएं तैयार कर सकें, परियोजनाओं का मूल्यांकन कर सकें, परिणामों की निगरानी कर सकें, खरीद व्यवस्था में सुधार कर सकें, सार्वजनिक संपत्तियों का प्रबंधन कर सकें और विभागों के बीच समन्वय बिठा सकें। अगर भारत जमीनी स्तर की योजना के प्रति गंभीर है, तो जिला केवल एक प्रशासनिक इकाई बनकर नहीं रह सकता। इसे योजना, डेटा और क्रियान्वयन की एक जीवंत इकाई बनना होगा।

क्यों न अर्थशास्त्र, प्रबंधन, सार्वजनिक वित्त, सांख्यिकी, जीआईएस, बुनियादी ढांचा योजना और सामाजिक क्षेत्र की डिलीवरी में प्रशिक्षित युवा पेशेवरों के साथ जिला योजना कार्यालयों को मजबूत किया जाए? कॉरपोरेट नौकरियों के पीछे भागने वाले सामान्य एमबीए तैयार करने के बजाय, हम जिला विकास विश्लेषक, नगरपालिका वित्त सहयोगी, खरीद विशेषज्ञ, स्वास्थ्य प्रणाली प्रबंधक, शिक्षा डेटा अधिकारी और जलवायु अनुकूलन अधिकारी बना सकते हैं। ऐसी टीमें स्थानीय शासन को बदल सकती हैं और सार्थक नौकरियां पैदा कर सकती हैं।

ये ही वे जगहें हैं जहां पाठ्यक्रम सुधार और नौकरियों के नए प्रारूप को एक साथ चलना होगा। कॉलेजों से केवल यह कहना काफी नहीं है कि वे सिलेबस अपडेट करें। श्रम बाजार को भी ऐसी भूमिकाएं बनानी होंगी जो अपडेटेड स्किल्स को पुरस्कृत करें। यदि कॉलेज जलवायु-अनुकूल निर्माण सिखाते हैं लेकिन लोक निर्माण विभाग पुराने मानदंडों पर भर्ती करता है, तो कुछ नहीं बदलेगा। यदि एमबीए छात्र डेटा एनालिटिक्स सीखते हैं लेकिन जिला प्रशासनों में परिणामों की निगरानी या जीआईएस मैपिंग के लिए कोई पद ही नहीं है, तो वह हुनर बेकार चला जाएगा। नौकरी सुधार के बिना शिक्षा सुधार सिर्फ एक और 'प्रमाणपत्र की फैक्ट्री' बनकर रह जाता है।

सीईए का यह कहना भी सही है कि भारत को कुशल व्यवसायों को गंभीरता से लेना चाहिए। वेल्डिंग, प्लंबिंग, बढ़ईगीरी, इलेक्ट्रिकल काम, केयरगिविंग, नर्सिंग, हॉस्पिटैलिटी और पाक कला के कामों में मानवीय उपस्थिति, निर्णय, निपुणता और भरोसे की जरूरत होती है। इन्हें एआई द्वारा आसानी से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता। लेकिन यहां भी हमें सावधान रहने की जरूरत है। आप केवल उपदेश देकर सामाजिक नजरिया नहीं बदल सकते। एक मध्यमवर्गीय माता-पिता जिसने अपने बच्चे को इंजीनियर या एमबीए बनाने के लिए दो दशक खर्च किए हैं, वह अचानक वेल्डिंग को एक समान रूप से आकर्षक विकल्प के रूप में स्वीकार नहीं करेगा। भारत में, डिग्री केवल योग्यता नहीं; यह सामाजिक प्रतिष्ठा, विवाह की 'बाजार कीमत', जातिगत गतिशीलता, पलायन की संभावना और शारीरिक श्रम की अनिश्चितता के खिलाफ एक बीमा है।

यही वजह है कि जर्मनी, स्विट्जरलैंड, जापान या दक्षिण कोरिया के साथ तुलना बहुत सावधानी से की जानी चाहिए। वहां कुशल व्यवसायों का सम्मान इसलिए है क्योंकि वहां के संस्थानों ने उन्हें सम्मानजनक बनाया है।

भारत के पास ऐसा कोई पारिस्थितिक तंत्र नहीं है। हमारे पास उत्कृष्ट व्यक्तिगत कारीगर तो हैं, लेकिन प्लंबरों, इलेक्ट्रिशियनों, वेल्डर, बढ़ई या मैकेनिकों के लिए कोई मजबूत पेशेवर गिल्ड नहीं हैं। हमारे पास आईटीआई और कौशल योजनाएं तो हैं, लेकिन सामाजिक प्रतिष्ठा कमजोर है। हमारे पास प्रमाणपत्र हैं, लेकिन नियोक्ताओं का भरोसा नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत का कार्यबल अब भी अत्यधिक अनौपचारिक या गैर-पंजीकृत है। ऐसे बाजार में, कोई व्यावसायिक हुनर स्वतः ही सम्मान या आय की सुरक्षा में नहीं बदल जाता। इसका सीधा मतलब कैजुअल लेबर, मनमाना वेतन, कोई लिखित अनुबंध न होना, कोई बीमा न होना, कोई पेंशन न होना और असुरक्षित कामकाजी परिस्थितियां हो सकता है। इसके विपरीत, जर्मन कानून के तहत कंपनी बोर्डों में अनिवार्य श्रम प्रतिनिधित्व की व्यवस्था है। नोएडा और गुरुग्राम-मानेसर बेल्ट में औद्योगिक श्रमिकों द्वारा हाल ही में किया गया विरोध प्रदर्शन इसका एक बड़ा उदाहरण हैं। ऑटोमोटिव, गारमेंट्स और संबद्ध विनिर्माण के कई श्रमिकों ने कथित तौर पर लगभग 20,000 रुपये या उससे अधिक के बुनियादी मासिक वेतन के लिए विरोध प्रदर्शन किया। ये कोई सॉफ्टवेयर इंजीनियर नहीं थे जो अप्रेजल साइकिल की शिकायत कर रहे थे। ये कारखाने के मजदूर थे जो कह रहे थे कि उनका वेतन जीवित रहने के स्तर से भी कम है। आईटी क्षेत्र एक अपेक्षाकृत औपचारिक, वैश्विक स्तर पर जुड़े श्रम बाजार के रूप में उभरा; जबकि औद्योगिक और व्यापारिक श्रमिक अनौपचारिकता और अनुबंध श्रम के बीच फंसे हैं और उनकी सामूहिक आवाज बहुत कमजोर है। असली और गहरी समस्या भारत का स्नातक बेरोजगारी संकट है। लाखों युवा स्नातक काम करने, कमाने या अनुभव हासिल करने के बजाय प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे हैं। सरकारी नौकरी एक लॉटरी का टिकट बन गई है; कोचिंग क्लास एक वेटिंग रूम बन गई है। यह कोई अतार्किक व्यवहार नहीं है। यह एक ऐसे श्रम बाजार के प्रति युवाओं की बेहद व्यावहारिक प्रतिक्रिया है जहां निजी क्षेत्र की शुरुआती नौकरियां बहुत कम वेतन देती हैं और असुरक्षित हैं, जबकि सरकारी नौकरियां एक सम्मानजनक वेतन, रुतबा, सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती हैं।

यही तर्क विश्वविद्यालयों पर भी लागू होता है। इंटरनेट, ऑनलाइन कोर्सेज, बूटकैंप, महामारी और अब एआई ट्यूटर्स के कारण विश्वविद्यालय अप्रासंगिक होते जा रहे हैं। फिर भी उच्च शिक्षा का बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ है। असली मुद्दा यह है कि क्या विश्वविद्यालय एआई का उपयोग सीखने में एक भागीदार के रूप में करेंगे या केवल इसे नकल करने के एक टूल की तरह देखेंगे।

सीईए की चेतावनी बिल्कुल सही समय पर आई है। लेकिन नीतिगत संदेश डिग्री को दफनाने का नहीं, बल्कि उसे नए सिरे से डिजाइन करने का होना चाहिए। व्यावसायिक हुनर को औपचारिक रूप दिए जाने और सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल करने की आवश्यकता है। भारत का रोजगार संकट केवल एक सामाजिक सनक की जगह दूसरी सनक लाकर हल नहीं होगा। यह तब हल होगा जब कोई युवा सिविल इंजीनियर, कोडर, नर्स, शेफ, वेल्डर, जिला योजनाकार, तकनीशियन, शिक्षक, उद्यमी या लोक सेवक बन सके- और प्रत्येक रास्ते में सम्मान, आय, सुरक्षा और आगे बढ़ने के मौके हों। ■

भारत का रोजगार संकट केवल एक सामाजिक सनक की जगह दूसरी सनक लाकर हल नहीं होगा। यह तब हल होगा जब कोई युवा सिविल इंजीनियर, नर्स, वेल्डर, जिला योजनाकार या लोक सेवक बने- और हर रास्ते में सम्मान, आय, सुरक्षा और आगे बढ़ने के मौके हों

फोटो: गेटी इमेजेज

नई दिल्ली के तालकटोरा स्टेडियम में आयोजित युवक कांग्रेस रोजगार मेले में जुटे नौजवान

अजित रानाडे जाने-माने अर्थशास्त्री हैं। सौजन्यः बिलियन प्रेस

"बच्चों की ख़ातिर तो यहां आना ही था"

मोदी के दौर में होश संभालने वाली युवा पीढ़ी नीट और सीबीएसई विरोध के ज़रिए एक ऐलान कर रही है

नंदलाल शर्मा

राजस्थान के कोटा से लेकर दिल्ली के जंतर-मंतर तक युवा पीढ़ी (जेन जी) विरोध-प्रदर्शन कर रही है, उस सरकार से जवाबदेही मांग रही है जिसने उनके भविष्य के सपनों को खतरे में झोंक दिया है।

आस्था बिहार से हैं, नीट की तैयारी कर रही हैं। 17 जून को, यानी दोबारा परीक्षा (पेपर लीक के बाद) से ठीक चार दिन पहले, उन्हें लगा कि विपक्ष के नेता राहुल गांधी के नेतृत्व वाले 'छात्रों की गूंज' अभियान में उन्हें शामिल होना चाहिए। आस्था कहती हैंः "2024 में भी नीट का पेपर लीक हुआ था, लेकिन सरकार मानी ही नहीं! इस साल पेपर लीक होने के बाद, एक दर्जन से ज्यादा छात्र आत्महत्या कर चुके हैं (ताजा आंकड़ों के मुताबिक 20)। अगर मोदी सरकार ठीक से परीक्षा भी नहीं करवा सकती, तो उसे सत्ता से हट जाना चाहिए!"

हमारे देश में पेपर लीक होना इतना आम है, कि अब हमें इसकी आदत-सी हो गई है। अक्सर तो यह खबर सुर्खियों में भी नहीं आती। लेकिन इस साल नीट पेपर लीक और सीबीएसई क्लास 12 के ऑनलाइन मूल्यांकन में हुई गड़बड़ी ने ऐसी आग भड़काई कि सरकार भी हतप्रभ रह गई। सार्थक सिद्धांत और निसर्ग अधिकारी जैसे युवाओं ने अपनी तकनीकी समझ का इस्तेमाल कर सीबीएसई की पोल क्या खोली, आस्था और खुशी जैसे तमाम युवा सड़कों पर उतर आए। ये चारों उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं जो नरेन्द्र मोदी के दौर में बड़ी हुई है।

सड़कों पर विरोध-प्रदर्शन करने वाले सिर्फ स्कूली छात्र नहीं हैं। 14 जून को, बीपीएससी (बिहार पुलिस सबऑर्डिनेट सर्विसेज कमीशन) के तहत होने वाली मद्य निषेध विभाग की परीक्षा देने वाले उम्मीदवार पटना रेलवे स्टेशन पहुंचे, तो पता चला कि उनकी ट्रेन लेट है। बार-बार झटका खाते, सिस्टम से निराश अभ्यर्थियों ने नाराज होकर हंगामा और पुलिस पर पथराव किया। प्रयागराज में, छात्रों ने उत्तर प्रदेश लेखपाल भर्ती परीक्षा की गड़बड़ियों और पेपर लीक के खिलाफ विरोध किया और दोबारा परीक्षा कराने की मांग की। 12 जून को, लखनऊ के इको गार्डन में प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने वाले छात्रों का विरोध-प्रदर्शन देखने को मिला।

एनएसयूआई और यूथ कांग्रेस के कार्यकर्ता केन्द्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान के इस्तीफे और पेपर लीक मामलों में कार्रवाई की मांग को लेकर कई शहरों में प्रदर्शन कर रहे हैं, तो अभिजीत दिपके के नेतृत्व में बनी नई 'कॉकरोच जनता पार्टी' (सीजेपी) ने दिल्ली के जंतर-मंतर पर मोर्चा जमा रखा है। उनका कहना है कि धर्मेंद्र प्रधान के इस्तीफे तक वे वहां से हटने वाले नहीं।

वे अपनी बात को लेकर इतना स्पष्ट और मुखर हैं कि 22 जून के प्रदर्शन के दौरान एक छात्र ने भीड़ को संबोधित करते हुए कहा, "लोग पूछते हैं कि एक धर्मेंद्र प्रधान के इस्तीफे से क्या होगा? तो मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि एक मंत्री का भी इस्तीफा हो गया, तो बाकी मंत्रियों में डर पैदा होगा।"

जंतर-मंतर पर हो रहे विरोध-प्रदर्शन में वामपंथी छात्र संगठन, आम आदमी पार्टी की छात्र शाखा, कई मजदूर संगठन और भारतीय किसान यूनियन (चढ़ूनी) जैसे किसान संगठन शामिल हैं। इसी मेल-जोल का नतीजा है कि यहां 'मजदूर-छात्र-किसान एकता' और 'जल्द ही होने वाले' भारत-अमेरिका व्यापार समझौते के विरोध में भी नारे सुनाई दे रहे हैं।

*

हमारी बातचीत राउरकेला (ओडिशा) से आए राजा से हुई। वह अपनी मां के साथ आए हैं, जो कैंसर की मरीज हैं।

राजा कहते हैं, "मेरे परिवार से किसी ने भी नीट का एग्जाम नहीं दिया है, लेकिन पेपर लीक की वजह से अनेक छात्रों ने आत्महत्या की है। इसीलिए मैं और मेरी मां यहां आए हैं। ... हम दिन में बारह घंटे पढ़ाई करते हैं! धर्मेंद्र प्रधान को अंदाजा भी नहीं है कि बच्चे कितनी मेहनत करते हैं। मेरे हॉस्टल में टीचर मुझसे कपड़े धुलवाते हैं, जूते साफ करवाते हैं। स्कूल में बने रहने के लिए मुझे यह सब करना पड़ता है।"

भीषण गर्मी में जंतर-मंतर पर जमे राजा कहते हैं- "एक दिन मेरी मां बहुत बीमार हो गईं। दिपके और अन्य लोगों ने हमारी मदद की। हम यहां बिछी दरियों पर सोते हैं और सामाजिक कार्यकर्ता जो कुछ लाते हैं, वही खाते हैं।"

यहां कई लोग बतौर स्वयंसेवक भी स्वेच्छा से सक्रिय हैं। प्रदर्शनकारियों के लिए केले लेकर आई दिल्ली की प्रेरणा कहती हैंः "मैं छात्रों के समर्थन में आई हूं, उनकी मांगें जायज हैं।"

मोहम्मद जुनैद गाजियाबाद से आए हैं। वह अपने हिन्दू और सिख मित्रों के साथ यहां खाने-पीने का स्टॉल चला रहे हैं। कहते हैं, "मेरे पास जो कुछ भी था, लेकर जंतर-मंतर पर आ गया। फिर यहां मौजूद लोगों ने मदद करना शुरू कर दिया।" जनैद मुस्कुराते हुए मजरूह सुल्तानपुरी की एक पंक्ति दोहरा देते हैंः "मैं अकेला ही चला था जानिब-ए-मंजिल मगर, लोग साथ आते गए और कारवां बनता गया।"

इसी साल एलएलबी पूरी करने वाले जुनैद ने पानी की ढेरों बोतलें स्टाल पर जुटा रखी हैं। आने वाले लोग भी अपनी तरफ से जो कुछ हो सकता है, मदद करते हैं। मसलन पेशे से टीचर अमिताभ अपने साथ लाए बिस्कुट जुनैद को देते हैं; और जुनैद उन्हें चाय-पकौड़ों के साथ लोगों में बांटने लगते हैं।

अमिताभ कहते हैंः "ट्रेन हादसा हो या पेपर लीक, कोई जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं है। नहीं पता कि सीजेपी सफल होगी या नहीं, लेकिन मैं छात्रों के समर्थन में यहां आया हूं।"

खुशी अपनी बहन के साथ 22 जून को जंतर-मंतर पहुंचीं। 11वीं और 12वीं क्लास की ये छात्राएं बेहिचक कहती हैंः "हमें पता है कि भाजपा कैसे जीतती है। हमारी मां भाजपा की नेता हैं। दिल्ली चुनावों के दौरान, उन्हें पैसे मिले थे ताकि पड़ोस के लोगों को पैसे बांटकर उनके वोट लिए जा सकें।"

उनकी बहन बीच में ही बोल पड़ती हैः "लोगों को भाजपा को वोट नहीं देना चाहिए!" दोनों पश्चिमी दिल्ली के शादीपुर की रहने वाली हैं। उन्हें यहां आने के लिए घर वालों से अच्छी-खासी बहस करनी पड़ी। जिसके बाद घर के जरूरी काम निपटाकर वे जंतर-मंतर पहुंचीं थीं।

पाखी और उनकी सहेली 23 जून को पहली बार जंतर-मंतर आईं। दोनों ने दिल्ली यूनिवर्सिटी के लेडी श्रीराम कॉलेज से हाल ही में स्नातक की पढ़ाई पूरी की है। पाखी पूछती हैं, "अगर दुनिया भर के देशों में विरोध-प्रदर्शन बदलाव ला सकता है, तो भारत में क्यों नहीं?"

क्या उन्हें किसी तरह की प्रतिक्रिया या विरोध का डर है? वह कहती हैंः "अप्रैल में, हमारे कॉलेज की प्रिंसिपल का एक वीडियो भाजपा के सोशल मीडिया पेज पर शेयर किया गया था। हमने इसके खिलाफ आंदोलन शुरू किया। अगर प्रिंसिपल को अपनी राय रखने का अधिकार है, तो हमें भी है। इसके बाद से अब हमें कोई डर नहीं लगता।"

यहां मौजूद हर कोई समर्थक ही हो, ऐसा नहीं। कुछ उपद्रवी तत्व भी हैं जो घुसपैठ कर, माहौल बिगाड़ने और उकसाने की कोशिश करते हैं। कई बार जब मीडिया के 'माइक-धारी' लोग भीड़ में घुसकर उकसावे भरे सवाल पूछने लगते हैं, युवा प्रदर्शनकारियों का समूह उन्हें "गोदी मीडिया वापस जाओ!" जैसे जवाबी नारों के साथ परे धकेलने में पीछे नहीं रहता है।

शेष पेज 2 पर ▸

फोटो: विपिन

नई दिल्ली के जंतर मंतर पर शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान के इस्तीफे की मांग को लेकर चल रहा विरोध प्रदर्शन

फोटो: गेटी इमेजेज

कौन निगल रहा अरावली की हरियाली

राजस्थान में विरोध-प्रदर्शन कितने भी हो रहे हों, अवैध खनन रुकने का नाम नहीं ले रहा

राजस्थान के नीम का थाना में भगवानपुरा गांव में खनन के खिलाफ धरना देते लोग

रश्मि सहगल

राजस्थान में सीकर जिले के प्रेमपुरा गांव की महिलाएं इलाके में लगातार हो रहे अवैध खनन के खिलाफ तीन साल से विरोध प्रदर्शन कर रही हैं। दीपावास गांव में भी महिलाओं का समूहों में दिन-रात धरना जारी है। आस-पास की खदानों में लगातार होने वाले धमाकों से उनके घर दरक गए और जान जोखिम में है। धमाकों से उड़ने वाले मलबे और पत्थरों से डरकर बच्चे स्कूल नहीं जा रहे। हरियाली पर धूल जम गई है। खनन ने जलस्तर 1,000 फीट से भी नीचे धकेल दिया है।

ओजवासी मार्बल्स प्राइवेट लिमिटेड ने 2024 में 180 हेक्टेयर जमीन घेर ली, जिसमें 140 हेक्टेयर बतौर जंगल दर्ज है। सीकर के पर्यावरण कार्यकर्ता कैलाश मीणा के अनुसार, ग्रामीण परेशान हैं कि माइनिंग से गिरिजन नदी बर्बाद हो जाएगी, जो उनका एकमात्र जल-स्रोत है। इलाके की ज्यादातर नदियों का यही हाल है।

मीणा कहते हैं, "40 गांवों की 60,000 से ज्यादा आबादी इसी नदी पर निर्भर है। ग्रामीणों ने सुप्रीम कोर्ट में ओजवासी के खिलाफ याचिका डालकर बताया कि 2010 की 'फॉरेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया' की रिपोर्ट के अनुसार इलाका अरावली पहाड़ियों के दायरे में आता है। सुप्रीम कोर्ट ने माइनिंग रोकने का आदेश दिया, लेकिन हुआ कुछ नहीं।₹

कोटपुतली-बहरोड़ जिले के मोहनपुरा-जोधपुरा गांव में भी आदित्य बिड़ला की अल्ट्राटेक सीमेंट कंपनी के खिलाफ लंबे समय से विरोध-प्रदर्शन चल रहा है। लोग प्लांट बंद कर प्रभावित ग्रामीणों के पुनर्वास की मांग कर रहे हैं।

आंदोलन का नेतृत्व कर रहे जोधपुरा संघर्ष समिति के सदस्य और रिटायर्ड आर्मी ऑफिसर कैप्टन विनोद सिंह ने कहा, "दिन-रात ब्लास्ट से डेढ़ सौ घर और 80 ट्यूबवेल बर्बाद हो गए। एनजीटी ने पिछले साल 3 नवंबर को गांव के आधे किलोमीटर के दायरे में किसी तरह की ब्लास्टिंग न होने का आदेश दिया।" इसमें राजस्थान सरकार को प्रदूषण (क्रशर के साथ ही चूना पत्थर की माइनिंग करीब होने के कारण) प्रभावित लोगों के पुनर्वास के लिए समिति बनाने के साथ ही, क्षतिग्रस्त घरों के लिए प्रत्येक ग्रामीण को 50,000 रुपये मुआवजा और प्रदूषण से होने वाली बीमारियों से पीड़ित 109 ग्रामीणों को 20,000 रुपये देने का निर्देश भी था। लेकिन निर्देश का अब तक पालन नहीं हुआ।

कोटपुतली-बहरोड़ जिला में अजीतपुरा-कुजेता के लोग 300 से ज्यादा दिन से नेशनल लाइमस्टोन कंपनी प्रा.लि. द्वारा रिहायशी इलाकों के पास हो रही अवैध लाइमस्टोन माइनिंग और गड्ढे बनाकर होने वाले ब्लास्ट का विरोध कर रहे हैं। 29 मई को पुलिस ने इनके टेंट जबरन हटा दिए। लोग विरोध प्रदर्शन फिर शुरू करने का ज्ञापन सौंपने को इकट्ठा हुए, तो कुछ हथियारबंद लोगों ने उन पर गोलीबारी कर दी, जिससे कई ग्रामीण गंभीर रूप से घायल हो गए।

नागौर से राष्ट्रीय लोकतांत्रिक पार्टी के सांसद हनुमान बेनीवाल ने राज्य में फलते-फूलते माइनिंग माफिया के लिए भाजपा शीर्ष नेतृत्व को जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने कहा, "लाइमस्टोन की ये खदानें 40 साल पहले खरीदकर छोड़ दी गई थीं। अब जब इनकी कीमत बढ़ गई है, राजस्थान-गुजरात से गुंडे लाकर लोगों पर हमले करवाए जा रहे हैं।"

माइनिंग माफिया कितना बेखौफ है, साफ दिखता है। पिछले महीने कुछ बदमाशों ने शत्रु की धाणी गांव जाकर माइनिंग-विरोधी प्रदर्शनों में शामिल महिलाओं की पिटाई कर दी। ग्रामीण ओम प्रकाश के अनुसार, "छह महिलाएं घायल हुईं। एक के दांत टूट गए और दूसरी का हाथ।"

राजस्थान प्रदूषण बोर्ड भी बेपरवाह है। उसने 2008 से माइनिंग कंपनियों को कोई कारण बताओ नोटिस तक नहीं दिया। गुजरात के अरावली जिले के धनसुरा ब्लॉक में मेटल माइनिंग के लिए पत्थर की खदानों के पट्टे में गंभीर अनियमितताएं मिलने के बाद, खान और भू-विज्ञान विभाग ने 54 खदानों पर 63 लाख रुपये से ज्यादा का जुर्माना लगाया है। 12 मानकों पर अनियमितताएं मिलीं और हर साइट पर हर उल्लंघन के लिए 10,000 रुपये का जुर्माना लगा। 2014 में लीज जारी होने के बाद से यह इस तरह का पहला निरीक्षण था।

एक विभागीय अधिकारी मानते हैं कि अरबों रुपये का खनिज चोरी हो रहा है। उनका कहना है कि अगर पहले की तरह नियमित सालाना जांच होती, तो खदान मालिकों पर करोड़ों का जुर्माना लगता।

माइनिंग वाली जगहों पर बेखौफ माफिया की हिंसा अब आम है और गांव वाले इसका लगातार शिकार हैं। घने जंगलों वाली कई पहाड़ियां मलबा बन चुकी हैं। नदियां और उनके इकोसिस्टम सूख गए हैं, और पहले से किल्लत वाले इस इलाके में जल संकट और गहरा गया है।

हाल ही में कॉपर, जिंक, लेड, आयरन ओर, लाइमस्टोन, मार्बल, सोना और चांदी जैसे खनिजों से भरपूर जमीन के बड़े हिस्सों पर कब्जा करने की कॉरपोरेट कंपनियों की होड़ इसी नजरिये से देखी जानी चाहिए।

आदिवासी जन अधिकार एकता मंच की सुजाता कहती हैं कि वेदांता ग्रुप, अपनी सब्सिडियरी कंपनी हिन्दुस्तान जिंक के जरिये उदयपुर के पास दुनिया की कुछ सबसे बड़ी अंडरग्राउंड खदानें और स्मेल्टिंग कॉम्प्लेक्स चलाता है।

जिंक और आयरन ओर निकालने के लिए जावर माइन्स, सिंदेसर खुर्द माइन्स, राजपुरा दरीबा और कायद माइन्स यह ग्रुप चला रहा है। सुजाता का कहना है, "इनमें से कई भूमिगत खदानें हैं, इसलिए पानी के स्रोत सूख गए हैं।"

अडानी ग्रुप ने हाल ही में बांसवाड़ा, घटोला और जालोरा के गांवों में सोने की खुदाई शुरू की है। सुजाता बताती हैं, "फरारा के गांवों में लोहा और तांबा के लिए खुदाई हुई है। आदिवासियों को वन विभाग की ओर से जो नोटिस मिले हैं, उनके नतीजे अपने आप में गंभीर हो सकते हैं।"

2023 की सीएजी रिपोर्ट में रिमोट सेंसिंग डेटा और जीआईएस तकनीकों का इस्तेमाल करके 122 मामलों में गैर-कानूनी माइनिंग की पुष्टि की गई है। "पीपल फॉर अरावलीज" ग्रुप की संस्थापक नीलम अहलूवालिया कहती हैं, "हैरानी इस पर है कि निकोबार में काटे जा रहे जंगलों के बदले पेड़ लगाने का काम राजस्थान के महेन्द्रगढ़ में 500 एकड़ जमीन पर हो रहा!"

निर्माण उद्योग के निशाने पर अरावली का ग्रेनाइट भंडार खास तौर से रहता है। भले ही ये इलाके के 3 प्रतिशत से भी कम हिस्से में फैले हों, लेकिन दिल्ली-एनसीआर में निर्माणकार्यों की तेजी से फायदा उठाने की कोशिश कर रहे डेवलपर्स के लिए यह सोने की खदान से कम नहीं हैं। वकील हंसराज कहते हैं, "डूंगरपुर में हरे मार्बल, सफेद मार्बल, सोपस्टोन, जिंक और दूसरे खनिजों के लिए ऐसी होड़ है कि हमारा पूरा इकोसिस्टम ध्वस्त हो गया है। सीता माता वाइल्डलाइफ़ सैंक्चुअरी से निकलने वाली जाखम नदी, जो वहां पानी का सबसे बड़ा स्रोत है, अब स्थानीय आदिवासियों की पहुंच से दूर है; और उन्हें पेयजल तक नसीब नहीं। लेकिन माइनिंग वालों के लिए पानी की कमी नहीं है।"

अरावली दुनिया की सबसे पुरानी पर्वत श्रृंखलाओं में से है, जिसकी उम्र 2 से 3 अरब साल मानी जाती है। गुजरात से हरियाणा तक फैली यह पहाड़ियां जलवायु नियंत्रण का काम करती हैं। बारिश लाने वाली मानसूनी हवाओं को उत्तरी भारत की ओर ले जाने और हरियाणा, दिल्ली, यूपी के कुछ हिस्सों जैसे उत्तरी राज्यों को रेगिस्तान बनने से रोकने में रुकावट बनकर खड़ी इन पहाड़ियों की अहम भूमिका है।

अरावली रेंज में बेखौफ माइनिंग अब आम बात है। ऐसे में, सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले से, जिसमें ऊंचाई के आधार पर एक सीमित परिभाषा को मंजूरी मिली थी, इसे बर्बाद करने वालों को खुली छूट मिल जाती। इन पहाड़ियों के लगभग 90 प्रतिशत हिस्से से सुरक्षा हटा ली जाए, तो बड़े-बड़े इलाके विनाशकारी माइनिंग और रियल-एस्टेट कब्जे के लिए खुल जाएंगे।

नई परिभाषा तय करने वाले फैसले के जबरदस्त विरोध के बाद सुप्रीम कोर्ट ने अपने ही आदेश पर रोक लगाकर एक नई कमिटी बनाने का निर्देश दिया। लेकिन दुर्भाग्यवश इसमें सिर्फ सरकारी अधिकारी शामिल थे, कोई स्वतंत्र सदस्य नहीं। अब पर्यावरणविदों और कार्यकर्ताओं ने भारत के मुख्य न्यायाधीश से अरावली पहाड़ियों की परिभाषा तय करने के लिए एक नई स्वतंत्र कमिटी बनाने की अपील की है। पहाड़ियों की परिभाषा पर रिपोर्ट जमा करने की समय-सीमा 31 अगस्त है।

ऐसा लगता है कि मोदी सरकार तीन राज्यों में इकोसिस्टम की बर्बादी और लाखों लोगों के सांस की बीमारियों, सिलिकोसिस और प्रदूषण से जुड़ी बीमारियों की चपेट में आने से बेपरवाह है, लेकिन माइनिंग और रियल-एस्टेट लॉबी को खुश रखने के लिए वह कुछ भी करने को तैयार है। ■

खदानों में लगातार होने वाले धमाकों से घर दरक गए और जान जोखिम में है। हरियाली पर धूल जम गई है। खनन ने जलस्तर 1,000 फीट से भी नीचे धकेल दिया है

"बच्चों की ख़ातिर तो यहां आना ही था"

पेज एक का शेष

23 जून की शाम आम्बेडकरवादी युवा इन्फ्लुएंसर निशु के पिता एक हाथापाई में घायल हो गए। निशु 'वॉइस ऑफ निशु' नामक इंस्टाग्राम अकाउंट चलाती हैं (जिसके 3,00,000 से ज्यादा फॉलोअर हैं)। निशु अपने पिता के साथ जंतर-मंतर आती-जाती हैं, विरोध प्रदर्शन कवर करती हैं और लोगों से इसमें शामिल होने की अपील भी करती हैं। मानती हैं कि 'बस इसी वजह से उन पर और उनके पिता पर हमला हुआ'। हालांकि प्रदर्शनकारी जानते हैं कि निशु जैसी इन्फ्लुएंसर ही उनके सच्चे साथी-सहयोगी हैं और उनकी बात दूर तक पहुंचाने में असली मददगार।

जेएनयू छात्र संघ की संयुक्त सचिव दानिश कहती हैं, "पुलिस को ऊपर से आदेश है कि यह आंदोलन किसी भी तरह खत्म किया जाए। इसीलिए कभी पानी की सप्लाई काट दी जाती है, तो कभी बिजली बंद हो जाती है। कभी लोगों को अंदर आने से रोकने के लिए बैरिकेड्स लगा दिए जाते हैं।"

वामपंथी छात्र संगठन आइसा की राष्ट्रीय अध्यक्ष नेहा बोरा कहती हैं, यह तो होना ही था: "इस सरकार ने दमन और हिंसा की सारी हदें पर कर दी हैं। बेरोजगारी, खोखली होती अर्थव्यवस्था और दलितों, मुसलमानों और महिलाओं के खिलाफ हिंसा को लेकर लोगों में भारी निराशा है। विपक्ष को सोचना होगा कि युवाओं के इस गुस्से को किस तरह सही दिशा दी जाए।"

जंतर-मंतर पर चल रहे विरोध प्रदर्शन के चौथे दिन भीड़ पहले दिन के मुकाबले कम जरूर दिखी, लेकिन लोगों का जोश कम नहीं है। अब भी प्रदर्शन स्थल पर लोगों का आना-जाना दिन भर लगा रहता है। रमेश मीणा राजस्थान के नागौर से और आशु लुधियाना से आए हैं। ऐसे ही अनेक लोग जंतर-मंतर पर दिन-रात डेरा डाले रहते हैं।

मेरी नजर गाजियाबाद के लोनी की रहने वाली एक सत्तर साल की दादी पर पड़ी। पूछा कि क्या उनकी पोतियां उन्हें यहां लेकर आई हैं, तो उन्होंने तत्काल जवाब दिया: "नहीं, मैं उन्हें यहां लेकर आई हूं। यह मेरी जिद थी। बच्चों की खातिर हमें यहां आना ही था।" ■

अब बंगाल के मध्याह्न भोजन में भी हेर-फेर

सरकार बनने के कुछ ही दिनों में, राज्य की भाजपा सरकार ने इरादे साफ़ कर दिए हैं। कल्याणकारी योजनाओं को भी नहीं बख़्शेंगे ये

सौरभ सेन

पश्चिम बंगाल में हुए 2026 विधानसभा चुनावों से पहले जब शुभेंदु अधिकारी राज्य में विपक्ष के नेता थे, तो वह ममता बनर्जी की कल्याणकारी योजनाओं का मजाक उड़ाने के लिए अक्सर 'स्टिकर बदल' (स्टिकर बदलना) शब्द का इस्तेमाल किया था। अधिकारी कहते थे कि प्रधानमंत्री आवास योजना और प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना-जैसी केन्द्र सरकार की योजनाओं को ममता ने बस 'बंग्लार बाड़ी' या 'पथश्री' के नाम से दोबारा पेश किया है - वह यह भी कहते थे कि टीएमसी का काम बस 'केन्द्र सरकार का स्टिकर हटाकर अपना स्टिकर चिपकाने' तक ही सीमित है।

अब मुख्यमंत्री के तौर पर, अधिकारी उन योजनाओं को अपडेट करने के बजाय उन्हें व्यवस्थित रूप से खत्म कर रहे हैं या उनका नाम बदल रहे हैं। वैसे, टीएमसी सरकार के समय चल रही योजनाओं को पूरी तरह से केन्द्र के मॉडल (जैसे 'स्वास्थ्य साथी' की जगह 'आयुष्मान भारत') से बदलकर, नई सरकार यह संदेश दे रही है कि वे सिर्फ 'स्टिकर' नहीं बदल रहे हैं, बल्कि कल्याणकारी योजनाओं के लिए फंन्डिंग और उनके लक्ष्य तय करने के तरीके में भी बुनियादी बदलाव कर रहे हैं। पिछली सरकार की लगभग 90 सामाजिक कल्याण योजनाएं भी ध्यान खींच रही हैं, जिन पर सालाना करीब 1.8 लाख करोड़ रुपये खर्च होते हैं - यह बजट खर्च का लगभग 45 प्रतिशत है।

भाजपा सरकार ने खर्च की उस सीमा को तो बनाए रखा है, लेकिन टीएमसी के खास बंगाली नामों (जैसे लक्ष्मीर, स्वास्थ्य साथी, बांग्लार युवा) की जगह संस्कृत-हिन्दू-जुड़े नामों (जैसे अन्नपूर्णा) या पीएम-ब्रांड वाली केन्द्रीय योजनाओं को लागू किया है। कल्याणकारी योजनाओं का दायरा मोटे तौर पर वही है, बस उनका श्रेय लेने का तरीका बदल दिया गया है।

राज्य के वित्त मंत्री स्वप्न दासगुप्ता ने 22 जून को जो पहला बजट पेश किया, उसमें कल्याणकारी योजनाओं में किए गए इस बदलाव की झलक साफ दिखी। यह बजट मुख्य रूप से केन्द्र की नीतियों के साथ तालमेल बिठाने, तेजी से रोजगार पैदा करने और रियल एस्टेट एवं औद्योगिक क्षेत्रों में नियमों को आसान बनाने पर केन्द्रित था। इस नीतिगत बदलाव में 'डबल इंजन' तालमेल भी शामिल है - अधिकारियों का अनुमान है कि इससे केन्द्र के वे फंड मिल पाएंगे जो पहले रुके हुए थे या जिनकी मंजूरी अटकी हुई थी। इनकी कुल राशि लगभग 40,000 करोड़ रुपये है।

उदाहरण के लिए, महिलाओं के लिए बहुत लोकप्रिय 'लक्ष्मी भंडार' कैश ट्रांसफर स्कीम को अब 'अन्नपूर्णा योजना' में बदल दिया गया है, जिसमें मिलने वाली रकम 1,000 रुपये से बढ़कर 3,000 प्रति रुपये महीना हो गई है। लेकिन, इसमें एक पेंच यह है कि इसके लाभार्थियों की संख्या कम हो गई है। बायोमेट्रिक-वोटर डेटा के 'सख्त' वेरिफिकेशन के कारण लगभग 30 लाख लोगों के नाम हटा दिए गए हैं और उन्हें 'फर्जी' या 'अयोग्य' करार दिया गया है।

पॉलिसी में बदलाव योग्यता के नियम को लागू करने से आया है। 'लक्ष्मी भंडार' योजना सभी के लिए थी, जबकि 'अन्नपूर्णा योजना' में कुछ लाभार्थियों को बाहर कर दिया जा रहा है। डेवलपमेंट इकोनॉमिस्ट अभि रूप सरकार कहते हैं कि 'दुनिया भर में डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर (डीबीटी) योजनाएं इस सिद्धांत पर काम करती हैं कि वे किसी भी योग्य लाभार्थी को छोड़ने के बजाय हर किसी को - यहां तक कि अयोग्य लाभार्थियों को भी - शामिल करना पसंद करती हैं।' उन्होंने चेतावनी दी कि पात्रता के कड़े और जटिल नियमों की वजह से बड़ी संख्या में असली लाभार्थी कल्याणकारी योजनाओं के दायरे से बाहर हो जाएंगे।

30 लाख महिलाओं का नाम सूची से हटने से सरकार की आशंका सही साबित होती है। एक साधारण हिसाब से पता चलता है कि 36,000 करोड़ रुपये के बजट से अन्नपूर्णा योजना एक करोड़ महिलाओं को 3,000 रुपये दे सकती है - जो 'लक्ष्मीर भंडार' योजना की 2.4 करोड़ लाभार्थियों की संख्या के मुकाबले काफी कम है।

*

इसी तरह, पूरी तरह से राज्य द्वारा फंडेड 'स्वास्थ्य साथी' से केन्द्र की 'आयुष्मान भारत' योजना में बदलाव से कम आय वाले लगभग 1.43 करोड़ परिवार 60:40 के केन्द्र-राज्य फंड-शेयरिंग सिस्टम में आ जाएंगे। इससे भी जरूरी बात यह है कि इससे इंश्योरेंस-बेस्ड हेल्थ सिस्टम (स्वास्थ्य साथी) से एश्योरेंस-बेस्ड मॉडल की ओर बदलाव होगा। हालांकि हर मॉडल के अपने फायदे और कमियां हैं, लेकिन इस बदलाव को सही ढंग से मैनेज करना बहुत जरूरी होगा।

दूसरे कल्याणकारी उपायों के अलावा, पश्चिम बंगाल ने अब केन्द्र की पीएमएवाई-जी (प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण) को अपना लिया है। इसके तहत 25 लाख ग्रामीण घर बनाने के लिए 13,000 करोड़ रुपये का बजट रखा गया है। केन्द्र की वीबी-ग्रामजी योजना के तहत 14,000 करोड़ रुपये का फंड देकर ग्रामीण रोजगार को बड़े पैमाने पर बढ़ावा दिया जा रहा है। यह एक बहुत बड़ा बदलाव है, क्योंकि 2021 में केन्द्र की मनरेगा योजना का फंड रोक दिया गया था।

सबसे ज्यादा विवादित बदलाव स्कूली बच्चों के लिए मिड-डे मील से जुड़ा है, न सिर्फ इसलिए कि यह एक बहुत बड़ा बदलाव है, बल्कि इसलिए भी कि इसमें सामाजिक-राजनीतिक महत्व भी छिपा है। बजट में कोलकाता म्युनिसिपल इलाकों के सरकारी स्कूलों में मिड-डे मील तैयार करने, सप्लाई करने और उसका मैनेजमेंट करने के लिए इस्कॉन (इंटरनेशनल सोसाइटी फॉर कृष्णा कॉन्शियसनेस) के साथ मिलकर एक पायलट प्रोजेक्ट शुरू करने की जानकारी दी गई है।

ऐतिहासिक रूप से, राज्य सरकार ने सेंट्रलाइज्ड, बड़े पैमाने पर चलने वाली और ऑटोमेटेड किचन के बजाय विकेन्द्रीकृत और स्थानीय स्तर पर चलने वाले सिस्टम को प्राथमिकता दी है, जहां खाना सीधे स्कूल की किचन में स्थानीय महिला स्वयं-सहायता समूहों (एसएचजी) और खाना बनाने वाले तथा मदद करने वाले लोगों (कुक-कम-हेल्पर) द्वारा तैयार किया जाता है। सरकार का कहना है कि 'ग्रामीण बंगाल में मिड-डे मील का प्रबंधन करना एक बड़ी लॉजिस्टिकल चुनौती होगी। सिर्फ बड़ी कंपनियां ही सेंट्रलाइज्ड सिस्टम को संभाल पाएंगी। मिड-डे मील सरकार का काम है। इस्कॉन-जैसे एनजीओ को अपने काम पर ध्यान देना चाहिए।' इसके अलावा, अंडे की जगह सोयाबीन और राजमा का इस्तेमाल करने के इस्कॉन के सख्त शाकाहारी नियम ने विवाद खड़ा कर दिया है। राज्य के स्कूली शिक्षा मंत्री दीपक बरमन शाकाहारी भोजन का समर्थन करते हैं और उन्होंने कहा है कि 'अंडा स्कूली बच्चों के लिए प्रोटीन का एकमात्र स्रोत नहीं है। दुनिया भर में बहुत से लोग शाकाहारी हैं और उन्हें प्रोटीन की कमी नहीं होती है।'

जहां भाजपा में नए-नए शामिल हुए लोग इस पहल का स्वागत कर रहे हैं, वहीं बंगाली इसे हिन्दी भाषी उत्तर भारतीयों की ओर से सांस्कृतिक हमले और ऐसी आबादी की खान-पान की आदतों को बदलने की चाल के तौर पर देख रहे हैं, जिसमें 99 प्रतिशत लोग मांसाहारी हैं। कोलकाता के एक सरकारी स्कूल के टीचर ने नाम न बताने की शर्त पर कहा कि 'प्राइमरी स्कूल के बच्चों पर शाकाहारी खाना थोपने से उनकी खान-पान की आदतें बदल सकती हैं। जब स्कूल में मिलने वाला खाना घर पर खाए जाने वाले खाने से अलग होता है, तो भी दिक्कतें आ सकती हैं।'

सीपीआई-एम की राज्य समिति के सदस्य शतरूप घोष के अनुसार, प्राइमरी स्कूलों में शाकाहारी भोजन शुरू करना भाजपा के हिन्दुत्व प्रोजेक्ट का ही एक हिस्सा है। संडे नवजीवन से बातचीत में वह कहते हैं कि भाजपा जहां भी चुनाव जीतती है, वहां एक खास तरह की संस्कृति, पूजा-पद्धति और खान-पान थोपने की कोशिश करती है। मुद्दा सिर्फ मेन्यू बदलने का नहीं है। भाजपा बंगाल के बच्चों की खान-पान की आदतें बदलने की कोशिश कर रही है। ■

सरकारी स्कूलों में मिड-डे मील के लिए इस्कॉन के साथ मिलकर प्रोजेक्ट शुरू करना शुभेंदु सरकार की मंशा को ही उजागर करता है

अंडे की जगह सोयाबीन और राजमा के इस्तेमाल के इस्कॉन के सख्त शाकाहारी नियम ने विवाद खड़ा कर दिया है। इसे भाजपा के हिन्दुत्व प्रोजेक्ट का हिस्सा माना जा रहा

सौरभ सेन कोलकाता निवासी स्वतंत्र लेखक और कमेंटेटर हैं, जो राजनीति, मानवाधिकार और विदेश मामलों पर लिखते हैं

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

कर्ज माफी के चक्रव्यूह में उलझा किसान

महाराष्ट्र में कृषि कर्ज माफी योजना कहीं ज्यादा बड़े वादे कर रही

जयदीप हार्दीकर

महाराष्ट्र का किसान यह सब पहले भी देख चुका है। राज्य सरकार कर्ज माफी योजना की घोषणा करती है और इसे बड़ी राहत बताकर ढिंढोरा पीटती है। फिर उलझाने वाली नियम-शर्तें आती हैं, और उसके बाद उनकी समझ से परे डिजिटल औपचारिकताएं शुरू हो जाती हैं। इस बार भी कुछ अलग नहीं है।

महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री देवेंद्र फडणवीस द्वारा इस महीने की शुरुआत में बड़े धूमधाम से घोषित 'पुण्यश्लोक अहिल्यादेवी होल्कर शेतकरी कर्जमुक्ति योजना' की पात्रता शर्तों ने किसानों को असमंजस में डाल दिया है। यह योजना बहुत देरी से आई है, जिसने खरीफ सीजन की बुआई शुरू होने के बावजूद बैंकों से नया फसल कर्ज मिलने की संभावनाओं को खतरे में डाल दिया है।

किसान संगठन इस योजना के खिलाफ लामबंद हो गए हैं, जिसे वे राहत से ज्यादा एक 'स्टंट' कह रहे हैं। विरोध को देखते हुए सरकार ने अब शर्तों की समीक्षा के लिए एक उप-समिति बनाई है, जिससे इस योजना के लागू होने में और देरी हो रही है। महाराष्ट्र की यह नई कर्जमुक्ति योजना नवंबर 2025 में गठित एक समिति की उपज है, जिसे यह सिफारिश करने का काम सौंपा गया था कि किसानों को उनके बकाया कर्ज से कैसे मुक्त किया जाए।

साल 2017 के बाद से महाराष्ट्र में यह चौथी कर्ज माफी है- जो अपने आप में इस बात की स्वीकारोक्ति है कि पिछले तीन प्रयासों के बावजूद राज्य के किसान कर्ज के जाल से बाहर नहीं निकल पाए हैं। अनुभवी किसान नेता विजय जावंधिया ने 'संडे नवजीवन' को बताया, 'यह कर्ज माफी प्रोपेगैंडा से ज्यादा कुछ भी नहीं।' असली मुद्दा किसानों की बहुत कम और गिरती हुई आमदनी है, भले प्रधानमंत्री मोदी ने किसानों की आय दोगुनी करने का कितना भी बड़ा दावा किया हो।

जावंधिया कहते हैं, 'जब तक केन्द्र सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) बढ़ाने का वादा पूरा नहीं करती, कर्ज का यह अंतहीन चक्र खत्म होने से रहा।' उनका सवाल है कि जब ईंधन और उर्वरक (खाद) की कीमतें आसमान छू रही हैं और कृषि उपज के दाम ठिठके हुए हैं, तो किसान कैसे बचेगा?

सबसे तात्कालिक चिंता यह है कि यदि योजना में देरी होती है, तो क्या बकाया कर्ज वाले किसानों को नया फसल ऋण मिल पाएगा? यदि उन्हें बैंक से कर्ज नहीं मिला, तो उनके पास निजी साहूकारों के पास जाने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचेगा, जो उनसे ब्याज की मनमानी और भारी दरें वसूलेंगे।

यवतमाल के जालका गांव के एक कपास किसान नितिन खड़से कहते हैं, 'बैंकों के पास अभी भी नियमों को लेकर स्पष्टता नहीं है, क्योंकि पात्रता की अनगिनत शर्तें हैं। हमारी चिंता यह है कि जब तक पुराना कर्ज चुकता नहीं होता, हमें आने वाले सीजन के लिए नया लोन नहीं मिलेगा।' यह नई कर्जमुक्ति योजना प्रति किसान अल्पकालिक फसल ऋण के लिए अधिकतम 2 लाख रुपये तक की माफी का प्रावधान करती है। इसके लिए पात्र होने के लिए, कर्ज 1 अप्रैल 2019 से 31 मार्च 2025 के बीच वितरित किया होना चाहिए, जो 30 सितंबर 2025 को बकाया था और 31 मार्च 2026 तक चुकाया नहीं गया हो। यह माफी किसान की जोत की परवाह किए बिना, मूलधन और ब्याज की कुल बकाया राशि पर लागू होती है। सरकार ने इसमें पुनर्गठित फसल ऋणों को भी शामिल किया है, जिससे साफ होता है कि कई किसान पहले भी कर्ज पुनर्गठन की प्रक्रिया से गुजरने के बाद दोबारा डिफॉल्टर हो गए थे।

सबसे विवादास्पद प्रावधान उन किसानों से जुड़ा है जो पहले ही 2019 की 'महात्मा ज्योतिराव फुले शेतकरी कर्जमुक्ति योजना' का लाभ उठा चुके हैं। पिछली कर्ज माफी का लाभ लेने वाले किसानों को इस बार पूरा फायदा नहीं मिल सकता है। सरकारी प्रस्ताव के मुताबिकः ऐसे किसानों को दोबारा 2 लाख रुपये तक की पूर्ण माफी नहीं मिलेगी। वे केवल 50,000 रुपये तक की राहत के हकदार हैं।

साफ है, सरकार एक ही कर्जदार को बार-बार पूरी माफी देने से बच रही है, लेकिन इसके कारण विदर्भ और मराठवाड़ा जैसे केवल वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों में भारी आक्रोश है। इन क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन, कीटों के हमले, सिंचाई की कमी और कम आय के साथ महंगी लागत की दोहरी मार के कारण फसलें बार-बार बर्बाद होती हैं, जिससे पिछली राहत के बावजूद किसान दोबारा कर्ज के दलदल में धंस गए हैं।

योजना में एक और बड़ी सीमा तय की गई है। जिन किसानों का बकाया कर्ज 2 लाख रुपये से अधिक है, उन्हें सीधे पूरा लाभ नहीं मिलेगा। वन-टाइम सेटलमेंट (ओटीएस) का लाभ उठाने के लिए उन्हें पहले 2 लाख रुपये से ऊपर की अतिरिक्त राशि अपनी जेब से चुकानी होगी, जिसके बाद सरकार 2 लाख रुपये का बोझ उठाएगी। यही सिद्धांत 50,000 रुपये की रियायत के पात्र लोगों पर भी लागू होता हैः सरकारी मदद पाने से पहले उन्हें उस राशि से ऊपर का सारा बकाया खुद चुकाना होगा। वर्तमान शर्तों के अनुसार, ऐसे सेटलमेंट की अंतिम समय सीमा 31 मार्च 2027 है।

फोटो: गेटी इमेजेज

किसानों को उलझाने वाली ही साबित हो रही महाराष्ट्र सरकार की कर्ज माफी योजना

जब तक ईंधन और उर्वरक की कीमतें आसमान छू रही हैं और कृषि उपज के दाम ठिठके हैं, तब तक कर्ज का यह अंतहीन चक्र खत्म नहीं होगा। ओटीएस का यह विचार अजीब है, सरकार को कॉरपोरेट कंपनियों के एनपीए की तरह बैंकों से समझौता करना चाहिए था

दूसरे शब्दों में, यह योजना सबसे ज्यादा कर्जदार किसानों को कोई राहत नहीं देगी। एक किसान जिस पर मान लीजिए 3 से 4 लाख रुपये का कर्ज है, उसे राहत पाने के लिए पहले एक बड़ा हिस्सा चुकाने का इंतजाम करना होगा। अधिकतर किसान ऐसा करने में विफल रहेंगे और इस नई योजना के तहत लाभ पाने के अयोग्य हो जाएंगे।

ओटीएस का यह विचार अजीब है। केरला ने 2007-2010 की अवधि में इसे कहीं अधिक प्रभावी ढंग से किया था। उसने बैंकों के साथ मामला-दर-मामला आधार पर बहुत कम राशि में समझौता करने के लिए एक किसान आयोग का गठन किया था, ठीक उसी तरह जैसे बड़ी कॉर्पोरेट कंपनियों के एनपीए के लिए किया जाता है। महाराष्ट्र ने ऐसा कुछ नहीं किया।

इसी बीच, राज्य के बढ़ते राजकोषीय घाटे और 11 लाख करोड़ रुपये से ऊपर पहुंच चुके कर्ज की चिंताओं के बीच, राज्य सरकार ने 22 जून को विधायिका से 97,706 करोड़ रुपये की पूरक मांगों की मंजूरी मांगी। बजट पेश होने के कुछ ही महीनों के भीतर, मानसून सत्र के पहले ही दिन यह मांग रखी गई। अजित पवार के निधन के बाद से वित्त मंत्रालय का प्रभार संभाल रहे फडणवीस ने सदन को बताया कि इन पूरक मांगों में से 20,552 करोड़ रुपये कृषि कर्ज माफी योजना के लिए आवंटित किए जाएंगे।

सरकार का अनुमान है कि इस योजना से 36,000 करोड़ रुपये की लागत से 56 लाख किसानों को लाभ होगा। जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह पूर्ण कर्ज माफी नहीं बल्कि तमाम शर्तों से बंधी एक ऋण-राहत योजना है। इसमें आदतन डिफॉल्टर्स के मुकाबले ईमानदार कर्जदारों को पुरस्कृत करने के लिए एक प्रोत्साहन ढांचा भी बनाया गया हैः जिन्होंने 2022-23 और 2024-25 के बीच कम-से-कम दो कृषि वर्षों में कर्ज चुका दिया था, उन्हें 50,000 रुपये तक का प्रोत्साहन मिलेगा। छोटे कर्जदार, जिनका लोन 50,000 रुपये से कम था, उन्हें न्यूनतम 5,000 रुपये के प्रोत्साहन का आश्वासन दिया गया है।

यह योजना राष्ट्रीय, निजी, क्षेत्रीय ग्रामीण, जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों और कुछ अन्य सहकारी ऋण संस्थानों के लोन को कवर करती है। लेकिन लाभ पाना डिजिटल सत्यापन की एक नई जटिल परत से जुड़ा हुआ है। अनिवार्य प्रमाणीकरण के अलावा, 'एग्री स्टैक' किसान डेटाबेस पर पंजीकरण भी अनिवार्य है। इस योजना को पूरी तरह डिजिटल तरीके से लागू किया जाना है, जो एक और कारण है जिससे किसानों को बाहर हो जाने का डर सता रहा है, और उनका यह डर अनुभव आधारित है।

साल 2017, 2019 और 2022 के कर्ज माफी कार्यक्रम डिजिटल सत्यापन प्रक्रियाओं के कारण समस्याओं में फंस गया था। सरकारी प्रस्ताव के भीतर चुपके से एक 'सहकार स्टैक' बनाने का प्रस्ताव भी छिपा है। इसका घोषित उद्देश्य एक साझा डिजिटल ढांचे में किसानों के रिकॉर्ड, क्रेडिट हिस्ट्री और सहकारी संस्थानों को एकीकृत करना है।

इसका दीर्घकालिक उद्देश्य महाराष्ट्र में कृषि ऋण और सहकारी प्रशासन के लिए एक बड़ा डेटाबेस तैयार करना जान पड़ता है। लेकिन यह बात उस सरकार के मुंह से शोभा नहीं देती जिसने 2024 के विधानसभा चुनावों से ठीक पहले 'लाड़की बहिन योजना' के तहत महिलाओं को बिना शर्त 2,000 रुपये प्रति माह का वादा करके उन्हें पैसे दिए लेकिन चुनाव खत्म होते ही योजना का पुनर्गठन करके 1 करोड़ से अधिक लाभार्थियों को सूची से बाहर कर दिया। ■

धरती का जल निगलने वाला कारोबार

बड़ा सवाल कि क्या एआई-जनित डिजिटल महत्वाकांक्षाएं पानी की किल्लत और पर्यावरण के विनाश की वाहक बनेंगी

हरजिंदर

भारत की डिजिटल क्रांति को अक्सर सुथरी, भविष्य-उन्मुखी और लगभग भारहीन बताया जाता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, क्लाउड कंप्यूटिंग और डिजिटल सेवाएं मानो किसी अदृश्य दुनिया में मौजूद रहती हों। मगर इस छवि के पीछे एक विशाल भौतिक रचना खड़ी है- सर्वरों से भरे परिसर, रेफ्रिजरेटर प्रणालियां, विद्युत संयंत्र और ट्रांसमिशन लाइनें।

उधर, अमेरिका, यूरोप और दक्षिण-पूर्व एशिया में स्थानीय समुदाय अब नए डेटा सेंटर परियोजनाओं का विरोध करने लगे हैं। वहां लोग इसके खिलाफ आवाज उठा रहे हैं क्योंकि ये उद्योग पानी, बिजली और भूमि की असीम भूख पर चलते हैं। लेकिन, भारत तेजी से दुनिया के सबसे बड़े डेटा सेंटर केन्द्रों में शामिल होने की दिशा में बढ़ रहा है। इससे एक असहज प्रश्न खड़ा होता है- क्या डिजिटल महत्वाकांक्षाएं स्वच्छ पर्यावरण के साथ रह सकती हैं?

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और क्लाउड सेवाओं की बढ़ती मांग से प्रेरित होकर भारत की डेटा सेंटर क्षमता में भारी विस्तार होने की उम्मीद है। यह 2025 में लगभग 1.4 गीगावाट से बढ़कर 2030 तक लगभग 17 गीगावाट तक पहुंच सकती है।

केन्द्र और राज्य सरकारों ने गूगल, अमेजन और माइक्रोसॉफ्ट जैसी वैश्विक कंपनियों को आकर्षित करने के लिए अनेक प्रोत्साहन पेश किए हैं। इनमें लंबी कर-छूट अवधि, बिजली शुल्क में छूट, रियायती दरों पर भूमि आवंटन और जल पर सब्सिडी शामिल हैं। कुछ मामलों में पर्यावरणीय सुरक्षा मानकों में भी ढील दी गई है। आंध्र प्रदेश में गूगल की प्रस्तावित परियोजना से जुड़ी रिपोर्टों में संकेत मिला कि पर्यावरण प्रभाव आकलन की आवश्यकताओं को कमजोर किया गया या उनसे छूट दी गई।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कई बार डेटा सेंटरों को बड़े रोजगार सृजक के रूप में पेश करते हुए "दुनिया का पूरा डेटा भारत में रखने" का आह्वान किया है। हालांकि आलोचकों का कहना है कि यह दावा अक्सर बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है। एक बार संचालन शुरू होने के बाद, हाइपरस्केल डेटा सेंटरों को आमतौर पर केवल सीमित संख्या में तकनीशियनों, इंजीनियरों और रखरखाव कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। मैन्युफैक्चरिंग की तुलना में वे विशाल भूमि और संसाधनों का उपयोग करने के बावजूद दीर्घकालिक रोजगार के बहुत कम अवसर पैदा करते हैं।

डेटा सेंटर के लिए सबसे बड़ी समस्या पानी-बिजली की है जिस पर किसी का ध्यान नहीं

सबसे बड़ी चिंता पानी की है। डेटा सेंटर अत्यधिक गर्मी पैदा करते हैं और उपकरणों को खराब होने से बचाने के लिए निरंतर रेफ्रिजरेशन की जरूरत होती है। भाप आधारित रेफ्रिजरेशन वाला 100 मेगावाट का एक सामान्य डेटा सेंटर प्रतिदिन 8 लाख से 20 लाख लीटर पानी की इस्तेमाल करता है, जिससे हजारों परिवारों की रोजाना जरूरतें पूरी की जा सकती हैं।

कई डेटा सेंटर ऐसी जगह बनाए जा रहे हैं जो पहले से ही जल संकट का सामना कर रहे हैं। मुंबई के बाद भारत का दूसरा सबसे बड़ा डेटा सेंटर केन्द्र हैदराबाद बन रहा है, जहां लगभग 42 डेटा सेंटर चालू हैं या निर्माणाधीन हैं। अनुमान है कि आने वाले वर्षों में पहले से ही जल की तंगी झेल रहे इस शहर को प्रतिदिन लगभग 90.9 करोड़ लीटर पानी की कमी का सामना करना पड़ सकता है।

इन चिंताओं के बावजूद, प्रमुख क्लाउड कंपनियां विस्तार जारी रखे हुए हैं। विशेषज्ञों के अनुसार लंबी गर्मियों और हीटवेव के दौरान डेटा सेंटर सीमित जल संसाधनों के लिए निवासियों, उद्योगों और कृषि के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं।

यही हाल विशाखापट्टनम में भी है, जहां गूगल और रिलायंस के निवेश शहर को एक बड़े डिजिटल केन्द्र में बदल रहे हैं। जिले के कुछ हिस्सों में भूजल स्तर पहले ही काफी नीचे जा चुका है, जिससे भविष्य की स्थिरता को लेकर चिंताएं बढ़ गई हैं।

मुंबई और नवी मुंबई मिलकर देश में डेटा सेंटरों की सबसे बड़ी सघनता वाले क्षेत्र हैं, जहां लगभग 84 केन्द्र या तो चल रहे हैं या तैयार हो रहे हैं। उद्योग प्रतिनिधि अक्सर तर्क देते हैं कि तटीय क्षेत्रों में स्थित डेटा सेंटर रेफ्रिजरेशन के लिए समुद्री जल का उपयोग कर सकते हैं, जिससे मीठे पानी पर निर्भरता कम होती है। हालांकि वास्तविक जल उपयोग के पैटर्न को लेकर उद्योग कुछ साफ नहीं बताता।

समुद्री जल का उपयोग भी पर्यावरण की नजर से सुरक्षित नहीं है। निकाले गए गर्म पानी से समुद्र में जाकर वहां पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान पंहुचा सकता है, जबकि रासायनिक उपचार और संभावित उसके लिए अतिरिक्त जोखिम पैदा करते हैं।

सबसे दिलचस्प तुलना गुरुग्राम और नोएडा के बीच दिखाई देती है। गुरुग्राम, जिसे उत्तर भारत का साइबर सिटी कहा जाता है और जहां अनेक बहुराष्ट्रीय आईटी कंपनियों के कार्यालय हैं, वहां केवल कुछ ही डेटा सेंटर संचालित हैं। दूसरी ओर, अपेक्षाकृत छोटे आईटी तंत्र के बावजूद नोएडा और ग्रेटर नोएडा डेटा सेंटर प्रमुख ठिकाना बनकर उभरे हैं।

इसके कारण को समझने के लिए केवल जमीन के नीचे देखने की आवश्यकता है। गुरुग्राम में भूजल स्तर सतह से 34 से 38 मीटर नीचे पहुंच चुका है, जबकि नोएडा के कुछ हिस्सों में भूजल लगभग 20 मीटर की गहराई पर उपलब्ध है। जल की उपलब्धता भारत की डेटा अर्थव्यवस्था के भूगोल को निर्धारित करती है।

बिजली एक और बड़ी चुनौती पेश करती है। डेटा सेंटरों को चैबीसों घंटे निर्बाध बिजली आपूर्ति की आवश्यकता होती है। यद्यपि कंपनियां अक्सर रिन्यूअल ऊर्जा की बात करती हैं, असलियत यह है कि ये केन्द्र निरंतर आधारभूत बिजली मांग उत्पन्न करते हैं, जिसे केवल ऐसे स्रोतों से पूरा करना कठिन होता है।

मुंबई में डेटा सेंटरों से बढ़ती बिजली मांग ने पुराने कोयला आधारित बिजली संयंत्रों के संचालन को जारी रखने के निर्णयों को प्रभावित किया। इसका पर्यावरणीय बोझ उन समुदायों पर असमान रूप से पड़ता है जो इन संयंत्रों के आसपास रहते हैं। माहुल जैसे क्षेत्रों के निवासी लंबे समय से औद्योगिक प्रदूषण से जुड़ी श्वसन संबंधी बीमारियों, कैंसर और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं की शिकायत करते रहे हैं।

बिजली कटौती की स्थिति में कंपनियां बड़ी संख्या में औद्योगिक डीजल जनरेटर भी स्थापित करती हैं, जो पूरे डेटा सेंटर को चलाने में सक्षम होते हैं। पर्यावरण वैज्ञानिकों का कहना है कि ये जनरेटर पहले से ही खतरनाक शहरी वायु प्रदूषण को और गंभीर बना सकते हैं।

डेटा सेंटरों का भौतिक विस्तार सामाजिक परिणाम भी लेकर आता है। इन परियोजनाओं के लिए कृषि भूमि, बाग-बगीचे और यहां तक कि बस्तियों का भी अधिग्रहण किया जा रहा है। तेलंगाना में उन जमीनों के अधिग्रहण को लेकर चिंताएं उभरी हैं, जिन्हें मूल रूप से भूमिहीन अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति परिवारों को वितरित किया गया था। जैसे-जैसे डिजिटल केन्द्रों का विस्तार हो रहा है, आजीविका सुरक्षा और विस्थापन के प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं।

पानी, भूमि और ऊर्जा से परे एक और बढ़ती चुनौती है- ई-कचरा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता से संबंधित हार्डवेयर तेजी से विकसित होते हैं और उनके प्रोसेसर अक्सर दो से पांच वर्षों के भीतर चलन से बाहर हो जाते हैं। शोधकर्ताओं का अनुमान है कि केवल जनरेटिव एआई ही 2030 तक वैश्विक स्तर पर लाखों टन इलेक्ट्रॉनिक कचरा उत्पन्न कर सकती हैं।

भारत का अनौपचारिक क्षेत्र अधिकांश ई-कचरे को असुरक्षित तरीके से तोड़ने और जलाने का काम करता है। भारी धातुएं, विषैले रसायन, भूजल और वायु को प्रदूषित कर सकते हैं। एक शोधकर्ता के अनुसार- एआई का बुलबुला भले ही फूट जाए, लेकिन उसका कचरा दशकों तक बना रह सकता है।

पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता, संसाधनों को लेकर पारदर्शिता और स्थानीय सरकारों की मजबूत भागीदारी यह सुनिश्चित कर सकती है कि समुदायों को अपनी भूमि और संसाधनों से जुड़े निर्णयों में आवाज मिले।

पर्यावरणविदों का एक और महत्वपूर्ण प्रश्न भी ध्यान देने योग्य है- क्या ये डेटा सेंटर वास्तव में राष्ट्रीय संप्रभुता को मजबूत कर रहे हैं, या वे सिर्फ भारतीय भूमि पर अंतरराष्ट्रीय कॉरपोरेटस की मेजबानी भर कर रहे हैं?

इस प्रश्न का उत्तर भारत के डिजिटल भविष्य को आकार देगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता और क्लाउड कंप्यूटिंग की दिशा में देश की प्रगति भूजल के क्षय, कोयले पर बढ़ती निर्भरता और बढ़ती पर्यावरणीय असमानता की कीमत पर नहीं होनी चाहिए। अगले दशक में लिए गए निर्णय यह तय करेंगे कि भारत का डेटा सेंटर उछाल डिजिटल विकास की एक टिकाऊ नींव बनेगा या फिर यह केवल एक सिलिकॉन मृगतृष्णा साबित होगा, जो सूखती धरती और गायब होते जल संसाधनों पर खड़ी है। ■

भाप आधारित रेफ्रिजरेशन वाला 100 मेगावाट का एक सामान्य डेटा सेंटर प्रतिदिन 8 लाख से 20 लाख लीटर पानी का इस्तेमाल करता है, जिससे हजारों परिवारों की रोजाना जरूरतें पूरी की जा सकती हैं

सूने घोंसले और बूढ़े होते मां-बाप

वरिष्ठ नागरिकों के लिए केरला सरकार का प्रस्ताव जनसांख्यिकीय बदलावों की मनोवैज्ञानिक कीमत को करीब से देखने का मौका देता है

के.ए. शाजी

अनुकरणीय कही जा सकती है केरला में वरिष्ठ नागरिकों के लिए की गई पहल

राजेश तिरुवल्ला परित्यक्त लोगों की देखभाल शुरू करते, इसके पहले ही अपनों ने उन्हें छोड़ दिया था। केरला के पतनमतिट्टा जिले के अदूर में महात्मा जनसेवा केन्द्रम के संस्थापक राजेश का बचपन तिरस्कार, गरीबी और भावनात्मक उपेक्षा के साए में बीता। उनके माता-पिता ने दूसरी शादियां कर ली थीं, जिसके बाद वह दूर के रिश्तेदारों के रहमों-करम पर पले-बढ़े। भूख उनके जीवन की एक कड़वी हकीकत थी और औपचारिक शिक्षा विलासिता। लिहाजा, स्कूल छोड़ दिया और भारत के विभिन्न हिस्सों में छोटे-मोटे काम करते हुए कई साल बिताए।

जब वह केरला लौटे और अपने गांव के पास एक वृद्धाश्रम में काम करना शुरू किया, तो उनका जीवन बिल्कुल बदल गया। वहां, परिवारों द्वारा ठुकराए गए बुजुर्गों के प्रति उनकी सहानुभूति ने लोगों का ध्यान खींचा। आगंतुकों ने उनके धैर्य को सराहा और बुजुर्गों ने उन पर भरोसा किया। उनके इस समर्पण को पहचानने वालों में एक वरिष्ठ आईएएस अधिकारी भी थे, जिन्होंने राजेश के सामने एक अनोखा प्रस्ताव रखाः क्या वह उनकी 107 वर्षीय एक रिश्तेदार की देखभाल करेंगे? राजेश मान गए। करुणा के एक सीधे-सरल भाव से शुरू हुआ यह सफर धीरे-धीरे एक बड़े मानवीय मिशन में बदल गया।

आज महात्मा जनसेवा केन्द्रम बेसहारा वरिष्ठ नागरिकों के लिए केरला के सबसे बड़े आश्रयों में से एक है। यहां रहने वाले 370 से अधिक बुजुर्गों में से कई को उनके अपनों ने घर से निकाल दिया था। राजेश कहते हैं, 'केरला में वृद्धाश्रम कुकुरमुत्ते की तरह उग रहे हैं, जहां वरिष्ठ नागरिकों को बोझ के रूप में देखा जाने लगा है।'

उनकी यह टिप्पणी असहज करने वाली है क्योंकि यह केरला की उस स्थापित छवि को चुनौती देती है जिसके तहत माना जाता है कि वहां पारिवारिक रिश्ते आज भी बेहद मजबूत हैं। वास्तव में, यह टिप्पणी भारत के सबसे गहरे जनसांख्यिकीय बदलाव की ओर इशारा करती है। जिस पीढ़ी ने केरला के बहुचर्चित विकास मॉडल के निर्माण में योगदान दिया, वह बूढ़ी हो रही है- अक्सर अकेलेपन, असुरक्षा और अनिश्चितता के साए में।

हालात की इसी गंभीरता को देखते हुए वी.डी. सतीशन सरकार ने ऐतिहासिक हस्तक्षेप की घोषणा की हैः विशेष रूप से वरिष्ठ नागरिकों के लिए एक अलग विभाग का गठन। इस प्रस्ताव के तहत स्वास्थ्य सेवा, पुनर्वास, सामाजिक सुरक्षा और सामुदायिक सहायता को एक ही प्रशासनिक ढांचे के भीतर एकीकृत करने की योजना है।

केरला में लगभग 48 लाख वरिष्ठ नागरिक रहते हैं। इनमें पंद्रह फीसद 'अति-वरिष्ठ' (80 साल से अधिक) नागरिक हैं। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि केरला में जीवन प्रत्याशा भारत में सबसे अधिक है-पुरुषों के लिए 72.5 वर्ष और महिलाओं के लिए 77.8 वर्ष- जो बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं और जीवन स्तर का परिणाम है, लेकिन अब यही स्थिति नई सामाजिक चुनौतियां खड़ी कर रही है।

सेंटर फॉर डेवलपमेंट स्टडीज के पूर्व प्रोफेसर और इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ माइग्रेशन एंड डेवलपमेंट के अध्यक्ष प्रोफेसर एस. इरुदैया राजन ने इन बदलावों के प्रभावों के अध्ययन में दशकों बिताए हैं। 'केरला एजिंग सर्वे' और अन्य दीर्घकालिक शोध पहलों के माध्यम से, उन्होंने एक ऐसी घटना को दर्ज किया है जिसे आमतौर पर विकसित देशों से जोड़कर देखा जाता है।

युवा पीढ़ियों के बाहर चले जाने से पारिवारिक संरचनाएं और देखभाल के पारंपरिक तौर-तरीके पूरी तरह बदल गए हैं। पारंपरिक पारिवारिक सहयोग प्रणालियों के कमजोर होने, एकल परिवारों के बढ़ने और माता-पिता और बच्चों के बीच भौगोलिक दूरी बढ़ने से बुजुर्गों में नए प्रकार की असुरक्षा पैदा हुई है।

पतनमतिट्टा जिले के कुंबनाड गांव से बेहतर इन वास्तविकताओं को कोई और जगह बयां नहीं करती। खाड़ी देशों के विपरीत, कुंबनाड के लोग पश्चिम की ओर गए। यहां की महिलाओं ने ब्रिटेन, जर्मनी और अन्य यूरोपीय देशों में नर्सों के रूप में खुद को स्थापित किया है-वे विदेशों में बूढ़ी होती आबादी की देखभाल कर रही हैं, जबकि उनके अपने माता-पिता घर पर बूढ़े हो रहे हैं। यहां के युवा डॉक्टर, इंजीनियर, आईटी पेशेवर और उद्यमी के रूप में अमेरिका, कनाडा और यूरोप में बस गए हैं। पूरा परिवार विदेशों में बस गया, जिससे उनके लौटने की संभावना नहीं रही।

> युवा पीढ़ियों के बाहर चले जाने से पारिवारिक संरचनाएं और देखभाल के पारंपरिक तौर-तरीके पूरी तरह बदल गए हैं। पारंपरिक पारिवारिक सहयोग प्रणालियों के कमजोर होने, एकल परिवारों के बढ़ने और माता-पिता और बच्चों के बीच भौगोलिक दूरी बढ़ने से बुजुर्गों में नए प्रकार की असुरक्षा पैदा हुई है

इसका परिणाम है कि इस गांव के आलीशान और बड़े घरों में केवल अकेले, बूढ़े दंपति रह रहे हैं। पेंशन, बचत और विदेशों में रहने वाले बच्चों से मिलने वाली वित्तीय मदद भौतिक सुख-सुविधाएं तो देती हैं, लेकिन जिस चीज की कमी है, वह है भावनात्मक संबल। कुंबनाड के ही आईटी व्यवसायी जोसेफ सी. मैथ्यू कहते हैं, 'हमारे युवाओं ने वैश्विक स्तर पर सफलता हासिल की है। लेकिन इसका अनपेक्षित परिणाम यह हुआ है कि उनके माता-पिता अपने जीवन के अंतिम वर्ष बिल्कुल अकेले बिता रहे हैं।'

नेशनल सैंपल सर्वे (एनएसएस) के अनुसार, केरला की 65 प्रतिशत बुजुर्ग आबादी किसी न किसी बीमारी से पीड़ित है। उच्च रक्तचाप, मधुमेह, गठिया, हृदय रोग और दृष्टि दोष आम हैं।

स्वास्थ्य विभाग के आंकड़ों के मुताबिक, कम से कम 270 ऐसे बुजुर्ग मरीज, जो चिकित्सकीय रूप से पूरी तरह ठीक हो चुके हैं, आज भी सरकारी अस्पतालों में पड़े हैं क्योंकि उनके रिश्तेदारों ने उन्हें छोड़ दिया है। प्रारंभिक आकलन में अकेले तिरुवनंतपुरम के गवर्नमेंट मेडिकल कॉलेज अस्पताल में ही ऐसे दर्जनों मरीजों की पहचान की गई है। स्वास्थ्य मंत्री के. मुरलीधरन ने इस स्थिति को उन अस्पतालों के लिए एक गंभीर चुनौती बताया है जहां पहले से ही मरीज ज्यादा हैं और बेड बेहद कम।

अस्पतालों ने अब पुनर्वास के नए मॉडलों पर काम करना शुरू किया है। कोट्टायम मेडिकल कॉलेज अस्पताल ने रिश्तेदारों की तलाश करने और बुजुर्गों को वापस परिवार से जोड़ने के लिए एक टीम गठित की है। तमाम देखभालकर्ता अनुकरणीय सेवाएं दे रहे हैं, लेकिन अकेले रहने वाले बुजुर्गों के साथ वित्तीय धोखाधड़ी, दुर्व्यवहार और अपराध की बढ़ती घटनाएं एक और गंभीर चिंता का विषय बन चुकी हैं।

कभी मुख्य रूप से अत्यधिक गरीबी और लाचारी से जुड़े माने जाने वाले वृद्धाश्रम अब अमीर और गरीब दोनों सामाजिक वर्गों की जरूरत बनते जा रहे हैं। इनमें पठानपुरम का जनसेवा गांधी भवन भी शामिल है, जिसकी स्थापना साल 2002 में डॉ. पुनालूर सोमराजन ने की थी। डॉ. सोमराजन कहते हैं, 'हमारा मिशन हमेशा उन लोगों को उनका सम्मान लौटाना रहा जिनका दुनिया में कोई और ठिकाना नहीं।'

प्रस्तावित वरिष्ठ नागरिक विभाग का नेतृत्व करने वाले मंत्री सी.पी. जॉन का कहना है कि केरला का दृष्टिकोण बुजुर्गों को केवल कल्याणकारी योजनाओं के लाभार्थियों के रूप में देखने से आगे बढ़ना चाहिए। इस कार्य की प्रारंभिक रूपरेखा में शामिल सिविल सेवा अधिकारी अदीला अब्दुल्ला का मानना है कि नीतिगत नीतियां जमीनी अनुभवों से निकलनी चाहिए। एक विधवा की जरूरतें संस्थागत देखभाल चाहने वाले बिस्तर पर पड़े मरीज से अलग होती हैं। प्रवासी बच्चों से दूर रहने वाले अमीर बुजुर्ग दंपतियों की चुनौतियां आर्थिक रूप से कमजोर वरिष्ठ नागरिकों से भिन्न होती हैं।

यहां भारत के बाकी हिस्सों के लिए भी एक बड़ा सबक है। अध्ययनों से संकेत मिलता है कि केरला की आबादी साल 2023 के 3.34 करोड़ से बढ़कर 2036 में 3.69 करोड़ हो जाएगी, जिसके साथ जीवन प्रत्याशा भी लगातार बढ़ेगी। साल 2050 तक, हर तीसरा केरलावासी वरिष्ठ नागरिक हो सकता है।

राजेश तिरुवल्ला का यह सफर ऐसे सवाल खड़े करता है जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। जब परिवार नाकाम हो जाएं, तो बुजुर्गों की देखभाल कौन करे? समाज की क्या जिम्मेदारियां बनती हैं? और जब पारंपरिक पारिवारिक ताना-बाना नाकाफी हो जाए, तो सरकारों को कैसे कदम उठाने चाहिए?

राजेश के लिए, इसका जवाब बेहद व्यक्तिगत है। महात्मा जनसेवा केन्द्रम में आने वाले बुजुर्ग कोई 'लाभार्थी' नहीं हैं। ये वे लोग हैं जिन्होंने कभी बच्चों को पाला-पोसा, खेतों में हल चलाया, कक्षाओं में पढ़ाया, मरीजों का इलाज किया

चूंकि केरला अब वरिष्ठ नागरिकों के लिए एक समर्पित विभाग स्थापित करने की तैयारी कर रहा है, वह एक चौराहे पर खड़ा है। इसके फैसले यह तय करेंगे कि बुढ़ापा केवल अपनों द्वारा छोड़े जाने और संस्थागत शरणगाहों में सिमट जाने की एक दर्दभरी कहानी बना रहेगा, या फिर एक बदलते समाज के भीतर देखभाल और संबल को नए सिरे से परिभाषित करने का ऐतिहासिक मौका। ■

दिल बहलाने को तारीफ़ और रणनीतिक कीमत

भारत को करना पड़ रहा एकतरफा गठबंधन के नतीजों का सामना

आकार पटेल

पिछले हफ्ते 17 जून को खबर आई कि 'अमेरिका ने इंडो-पैसिफिक कमांड का नाम बदलकर फिर से पैसिफिक कमांड कर दिया है।' यह खबर अमेरिका के वॉर डिपार्टमेंट ने कश्मीर के एक गलत नक्शे के साथ जारी की थी। उसी दिन अमेरिका के राष्ट्रपति फ्रांस में हमारे प्रधानमंत्री से मिले और कहा कि मोदी 'बहुत सख्त बातचीत करने वाले व्यक्ति हैं... आप इस व्यक्ति को देखिए। वह बहुत सुंदर दिखते हैं। वह बहुत अच्छे लगते हैं, जैसे कोई फरिश्ता। लेकिन असल में, वह किसी हत्यारे जितने ही सख्त हैं... लेकिन वह बहुत अच्छे दिखते हैं। इसलिए वह आपको चौंका देते हैं। ऐसे लोग बहुत कम होते हैं।'

17 जून की ये दो खबरें कुछ हद तक एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। जानिए कैसे। फरवरी 2018 में डॉनल्ड ट्रंप के पहले कार्यकाल के दौरान, अमेरिका ने उस इलाके के लिए अपनी रणनीति बनाई जिसे वह इंडो-पैसिफिक कहने लगा था। इसका मकसद था अमेरिका की रणनीतिक बढ़त बनाए रखना... और साथ ही चीन को नए, गैर-उदारवादी प्रभाव वाले क्षेत्र बनाने से रोकना। अमेरिकी चाहते थे कि भारत चीन के मुकाबले एक संतुलन बनाने वाले देश के तौर पर काम करे। अमेरिका जो वांछित स्थिति चाहता था, वह यह थी कि सुरक्षा के मुद्दों पर भारत उसका पसंदीदा साझेदार बने, और दोनों देश समुद्री सुरक्षा बनाए रखने और चीन के प्रभाव का मुकाबला करने के लिए मिलकर काम करें।

कुछ पन्नों में अमेरिका ने यह योजना पेश की है कि वह भारत को प्रमुख रक्षा भागीदार कैसे बनाएगा और एक मजबूत भारतीय सेना अमेरिका के साथ प्रभावी ढंग से कैसे सहयोग करेगी। दस्तावेज में यह भी बताया गया है कि चीन के साथ क्या करने का इरादा हैः उसे अमेरिकी प्रतिस्पर्धात्मकता को नुकसान पहुंचाने से रोकना और चीन को सैन्य और रणनीतिक क्षमताओं को हासिल करने से रोकना।

भारत ने ऐसा क्यों किया? यह पता नहीं है। संसद में बिना किसी चर्चा, मीडिया को बिना किसी इंटरव्यू या प्रेस कांफ्रेंस और अपने चुनावी घोषणा-पत्रों में बिना किसी जिक्र के मोदी ने चीन के ख़िलाफ़ अमेरिका के साथ रणनीतिक साझेदारी और सैन्य गठबंधन में भारत को शामिल कर लिया। फरवरी 2020 में डोनाल्ड ट्रंप की भारत यात्रा के दौरान और लद्दाख संकट शुरू होने से कुछ दिन पहले, मोदी ने भारत को इस समझौते के लिए प्रतिबद्ध किया – जो असल में चीन के ख़िलाफ़ था – और इसे लागू करना शुरू कर दिया।

27 अक्तूबर 2020 को अमेरिकी विदेश मंत्री माइक पोम्पिओ की यात्रा के दौरान भारत ने बेसिक एक्सचेंज एंड कोऑपरेशन एग्रीमेंट (बीईसीए) पर हस्ताक्षर किए। इससे भारत को अमेरिकी इंटेलिजेंस (खुफिया जानकारी) मिल सकेगी, जिससे भारतीय सेना की मिसाइलों और हथियारों से लैस ड्रोन की सटीकता बेहतर होगी। एक और समझौता लॉजिस्टिक्स एक्सचेंज मेमोरेंडम ऑफ एग्रीमेंट (एलईएमओए) था। इसके तहत दोनों देशों की सेनाओं को एक-दूसरे के बेस से जरूरी चीजें लेने और एक-दूसरे की जमीनी सुविधाओं, एयर बेस और बंदरगाहों से सप्लाई, स्पेयर पार्ट्स और सेवाएं हासिल करने की अनुमति मिली।

दिल्ली में बीईसीए समझौते पर हस्ताक्षर करते हुए पोम्पियो ने सीधे चीन पर निशाना साधा। उन्होंने कहा, 'मुझे यह कहते हुए खुशी हो रही है कि अमेरिका और भारत हर तरह के खतरों के खिलाफ सहयोग को मजबूत करने के लिए कदम उठा रहे हैं, न कि सिर्फ उन खतरों के खिलाफ जो चीनी कम्युनिस्ट पार्टी से पैदा होते हैं।' अमेरिकी रक्षा मंत्री माइक एस्पर ने कहाः 'हम सभी के लिए एक आज़ाद और खुले इंडो-पैसिफिक के समर्थन में कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हैं, खासकर चीन की बढ़ती आक्रामकता और अस्थिर करने वाली गतिविधियों को देखते हुए।'

पोम्पियो और एस्पर के साथ खड़े राजनाथ सिंह और जयशंकर ने चीन का नाम नहीं लिया। राजनाथ सिंह के पहले से तैयार भाषण (जिसे बाद में बदल दिया गया) में एक लाइन का जिक्र था, जिसे बाद में हटा दिया गयाः 'माननीय, रक्षा के क्षेत्र में हमें अपनी उत्तरी सीमाओं पर कड़ी आक्रामकता की चुनौती का सामना करना पड़ रहा है।' सामान्य अक्षमता का प्रदर्शन करते हुए बयान में यह बदलाव अंग्रेजी में भारतीय अनुवादक को नहीं दिया गया, जिसने मूल पाठ पढ़ा और अमेरिकियों ने इसे जारी किया।

जब तीन महीने बाद अमेरिका की रणनीति वाला दस्तावेज सार्वजनिक किया गया, तो चीन ने कहा कि इसकी सामग्री से केवल अमेरिका की उस बुरी मंशा का पता चलता है जिसके तहत वह अपनी इंडो-पैसिफिक रणनीति का इस्तेमाल चीन को दबाने और रोकने तथा क्षेत्रीय शांति और स्थिरता को कमजोर करने के लिए कर रहा है। और यह भी कि अमेरिकी पक्ष गुटबाजी करने, छोटे-छोटे समूह बनाने और फूट डालने जैसे घटिया तरीकों को अपनाने में लगा हुआ है, जिससे क्षेत्रीय शांति, स्थिरता, एकजुटता और सहयोग को कमजोर करने वाले उपद्रवी के तौर पर उसका असली चेहरा पूरी तरह से सामने आ गया है। भारत ने इस दस्तावेज के जारी होने पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।

अमेरिका की इंडो-पैसिफिक रणनीति तैयार होने के कुछ हफ्ते बाद एक और समझौता हुआ, जिसका नाम था कम्युनिकेशंस कम्पैटिबिलिटी एंड सिक्योरिटी एग्रीमेंट (कॉमकासा)। इससे भारत को एन्क्रिप्टेड कम्युनिकेशन इक्विपमेंट और सिस्टम का एक्सेस मिला, ताकि भारत और अमेरिका के सैन्य कमांडर, और दोनों देशों के एयरक्राफ्ट और जहाज सुरक्षित नेटवर्क के जरिये बातचीत कर सकें। इस तरह बेका, लेमोआ और कॉमकासा ने दोनों देशों के बीच गहरे सैन्य सहयोग के लिए फाउंडेशनल पैक्ट्स (बुनियादी समझौतों) की तिकड़ी पूरी हुई।

कॉमकासा पर सितंबर 2018 में हस्ताक्षर हुए थे, जो मोदी के शी से मिलने वुहान जाने के पांच महीने की घटना है। वहां उन्होंने 28 अप्रैल 2018 को एक समझौते पर हस्ताक्षर किए थे कि भारत और चीन एक-दूसरे के दुश्मन नहीं, बल्कि सहयोगी होंगे। वे आपसी व्यापार और निवेश को आगे बढ़ाएंगे। समस्या, जो किसी को भी साफ दिख रही थी, यह थी कि चाहे मोदी इसे पूरी तरह समझते हों या नहीं, वे एक ही समय में दो विरोधी पक्षों के साथ चलने की कोशिश कर रहे थे।

एक तरफ जहां मोदी शी के साथ हाथ मिला रहे थे, वहीं दूसरी तरफ वे चीन को रोकने की ट्रंप की इंडो-पैसिफिक रणनीति का भी समर्थन कर रहे थे। इसके जवाब में शी ने लद्दाख बॉर्डर पर हलचल बढ़ा दी, ताकि भारत का फौजी ध्यान और संसाधन समुद्र के बजाय जमीन पर ही लगे रहें। पिछले छह सालों में हमने इसके नतीजे देखे हैं; बॉर्डर पर तनाव और फौजी तैनाती बनी हुई है, और व्यापार का संतुलन पूरी तरह चीन के पक्ष में है, जिसे हम तमाम कोशिशों के बावजूद दुरुस्त नहीं कर पा रहे हैं।

अपने दूसरे कार्यकाल में ट्रंप की इंडो-पैसिफिक रणनीति में दिलचस्पी कम हो गई। इस नाम को हटाने की घोषणा करने वाली हेडलाइन तो बस इसका आखिरी, सांकेतिक अंत है। सवाल यह है कि इतने महंगे और हल्के-फुल्के अभियान में शामिल होने से हमें क्या मिला? इसका जवाब है, जाहिर है, 17 जून की दूसरी खबरः हमारी पीठ थपथपाई गई और हमारी तारीफ की गई। ■

फोटो: गेटी इमेजेज

फ्रांस में जी7 बैठक के दौरान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप

> अपने दूसरे कार्यकाल में ट्रंप की इंडो-पैसिफिक रणनीति में दिलचस्पी कम हो गई। इस नाम को हटाने की घोषणा करने वाली हेडलाइन तो बस इसका आखिरी, सांकेतिक अंत है

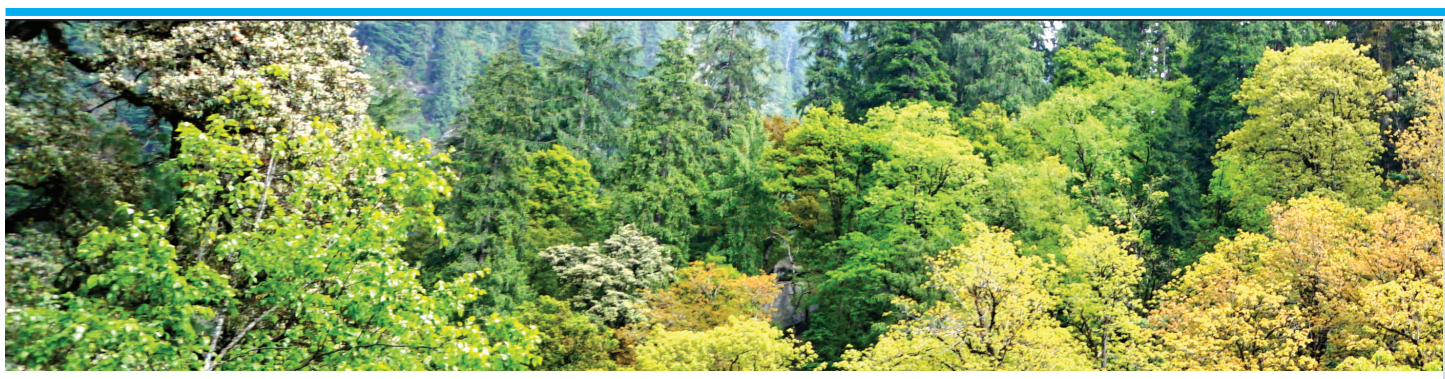

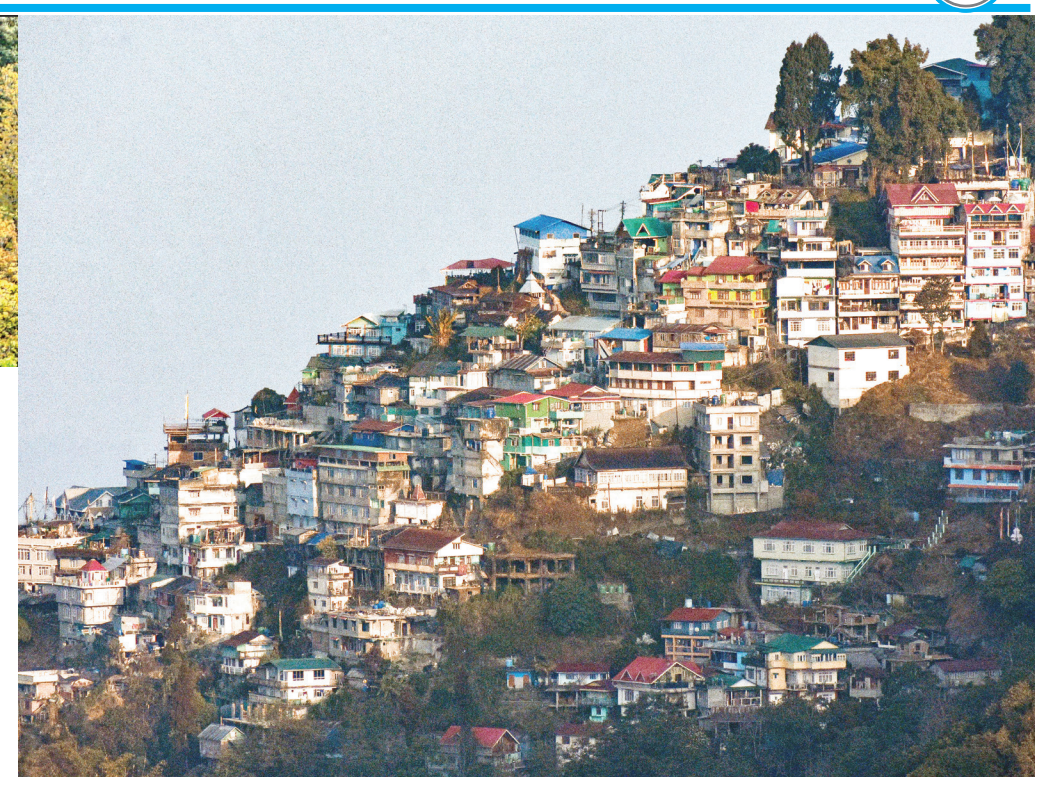

आखिर कहां गायब हो गईं ड्रैगनफ्लाई?

पेरू और वेल्स के कदम जैव विविधता को समझने की एक खिड़की खोलते हैं

अभय शुक्ला

जैव विविधता शायद प्राकृतिक पर्यावरण में सर्वाधिक उपेक्षित है। अगर इस पर कभी नीति नीति-निर्माताओं का ध्यान जाता भी है तो पेड़ों और जानवरों से आगे जाता ही नहीं। लेकिन जैव विविधता केवल पेड़ों और जानवरों तक सीमित नहीं। यह प्रकृति की वह बुनियादी निर्माण इकाई है, जिसके बिना न तो प्रकृति का कोई अस्तित्व रहेगा और न ही यह ग्रह रहने लायक बचेगा। जैव विविधता पृथ्वी पर मौजूद सभी जीवित प्राणियों की असाधारण विविधता का नाम है। इसमें पौधे, जानवर, सूक्ष्म जीव, फंगस और यहां तक कि पैथोजेन्स भी शामिल हैं; साथ ही इसमें उनके भीतर मौजूद आनुवंशिक जानकारी और उनके द्वारा निर्मित जटिल पारिस्थितिक तंत्र भी समाहित हैं। मैंने इस बात को अनुभवों के थपेड़े खाकर महसूस किया, और अब जाकर इसे थोड़ा समझना शुरू किया है।

जब मैंने साल 2002 में पुरानीकोटी गांव में आधा एकड़ जमीन खरीदी थी, तब यहां केवल दो घर हुआ करते थे; पूरे परिदृश्य में घास से ढके उतार-चढ़ाव वाले पहाड़ थे, जिनमें सेब के कुछ पेड़ और कुछ देवदार और ब्लू पाइन के पेड़ थे। मेरे अपने प्लॉट पर जंगली डेजी, बटरकप, लिली और प्रिमरोज के फूलों की चादर बिछी रहती थी। वह जगह व्यावहारिक रूप से मधुमक्खियों, तितलियों, झींगुरों और ड्रैगनफ्लाई से भरी रहती थी। धूप खिले दिनों में वहां इनकी एक भिनभिनाहट-सी आवाज गूंजती रहती थी। पक्षी खाद्य श्रृंखला में इनके ऊपर लेकिन जंगली बिल्लियों और पाइन मार्टिन (नेवले की एक प्रजाति) के नीचे हैं। पुरानीकोटी वाकई जैव विविधता का एक हॉटस्पॉट था!

लेकिन अब ऐसा नहीं। गांव की अधिकांश जमीन पर कंक्रीट के ढांचे खड़े हो चुके हैं, पेड़ काट दिए गए हैं, और ड्रैगन-फ्लाई की वह भिनभिनाहट अब कंक्रीट तोड़ने वाले जैक हैमर्स और आरी की कर्कश आवाजों में बदल चुकी है। इसकी भरपाई के लिए मैंने अपनी जमीन पर फलदार और जंगली किस्मों के 200 से अधिक पेड़ लगाए हैं। लेकिन इसका कोई फायदा नहीं हुआ, क्योंकि केवल एक प्लॉट पर पेड़ लगा देने भर से जैव विविधता का निर्माण नहीं हो सकता।

इस क्षेत्र में प्राकृतिक विकास की जो सबसे निचली परत थी- घास, झाड़ियां, फर्न, जंगली फूल, लताएं- वे सब खत्म हो चुकी हैं, और मिट्टी ने बारिश और बर्फ को जमा करने या नमी बनाए रखने की अपनी क्षमता खो दी है। प्रकृति की इस जीवित निर्माण इकाई के गायब होने के साथ ही, इस पर निर्भर कीड़े-मकोड़े भी लुप्त होने लगे हैं। कुछ गिनी-चुनी तितलियां और मधुमक्खियां अभी भी हमें आनंद देती हैं, लेकिन मैंने इस साल एक भी ड्रैगन-फ्लाई नहीं देखी। मुझे लगता है कि उनका बसेरा यहां से उठ चुका है और वे हमेशा के लिए चली गई हैं। एक या दो साल में मधुमक्खियां और तितलियां भी जैव विविधता से विहीन हो चुके इस बंजर इलाके को छोड़ देंगी।

ग्लोबल वार्मिंग के साथ-साथ यही वह मुख्य कारण है जो शायद यह साफ बताता है कि अब हम उन फलों-सेब, नाशपाती, खुबानी, चेरी-को क्यों नहीं उगा पा रहे हैं जिन्हें कभी उगाया करते थेः जैव विविधता के नष्ट होने से उनके फूलों को परागित करने के लिए न तो कीड़े बचे और न ही बीजों को फैलाने के लिए पक्षी।

कीमती जैव विविधता के इस नुकसान को शायद ही कभी हमारी योजना और विकास प्रक्रियाओं में शामिल किया जाता है। बहुत खींचतान कर जिस चीज पर विचार किया जाता है, वह है वन या हरित आवरण- यानी काटे गए पेड़ों की संख्या। इन्हें मापा जाता है, उनका मूल्य तय किया जाता है, परियोजना प्रस्तावक द्वारा वह राशि चुकाई जाती है और प्रतिपूरक वनीकरण के रूप में उसकी दोगुनी संख्या में पेड़ लगा दिए जाते हैं। लेकिन इस प्रक्रिया में जैव विविधता के नुकसान को सिरे से नजरअंदाज कर दिया जाता है और इसकी भरपाई कभी नहीं की जाती।

हिमाचल के कुछ आंकड़े इस बात को बेहतर ढंग से समझा सकते हैंः हिमाचल का वन क्षेत्र 37 लाख हेक्टेयर है, और भोपाल वन प्रबंधन संस्थान द्वारा 2024 के एक अध्ययन में इसके जैव विविधता मूल्य का आकलन 33,000 करोड़ रुपये प्रति वर्ष किया गया है। दूसरे शब्दों में, वनों के प्रत्येक हेक्टेयर का जैव विविधता योगदान मूल्य 89,000 रुपये प्रति वर्ष है। किसी भी परियोजना के सामान्य 25-30 वर्षों के जीवन चक्र पर इसके शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना की जाए, तो राज्य को गैर-वन उपयोग के लिए डाइवर्ट किए जाने वाले प्रत्येक हेक्टेयर वन के लिए कम से कम 30 लाख रुपये वसूलने चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं किया जाता क्योंकि जैव विविधता का कोई मूल्य ही नहीं आंका गया है।

> जैव विविधता केवल पेड़ों और जानवरों तक सीमित नहीं। उम्मीद करनी चाहिए कि सरकारें, अदालतें और एनजीटी इन पर ध्यान देंगे, और पारिस्थितिक मुद्दों पर गहरी नींद, सुस्ती और समझ की कमी से जागेंगे

हालांकि, वैश्विक स्तर पर अब इसमें बदलाव आ रहा है, भले ही हम भारत में हर साल भव्य और आडंबरपूर्ण योजनाओं के नाम पर लाखों पेड़ों को काटना जारी रखे हुए हैं। ऐसी योजनाएं जो जंगलों पर निर्भर हजारों समुदायों की आजीविका को उजाड़ देंगी लेकिन क्रोनी पूंजीपतियों की तिजोरी में कुछ खरब डॉलर जोड़ देंगी। उदाहरण के लिए, पेरू डंक-रहित मधुमक्खियों को कानूनी सुरक्षा देने वाला दुनिया का पहला देश बन गया है।

अमेजन के जंगलों के इन नन्हे परागणकों के पारिस्थितिक महत्व को स्वीकार करते हुए- जो अमेजन के 80% उष्णकटिबंधीय फलों को परागित करते हैं-इसी महीने एक कानून बनाया गया है जो उनके अस्तित्व के अधिकार, एक स्वच्छ और अक्षुण्ण आवास के अधिकार, पुनरुत्पादन के अधिकार और प्रदूषण, वनों की कटाई या परियोजनाओं द्वारा उनके अस्तित्व को खतरा पैदा होने पर कानूनी प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के अधिकार को मान्यता देता है। कोई भी कंपनी या व्यक्ति जो इन अधिकारों को खतरा पहुंचाता है, उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है और कानूनी कार्रवाई की जा सकती है।

इसी तरह, वेल्स में वाई नदी को उसके उद्गम स्थल से लेकर समुद्र तक 'प्रकृति के अधिकारों' के तहत कानूनी सुरक्षा दी गई है। यह नया चार्टर नदी को एक जीवित पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में मान्यता देता है जिसका अपना अंतर्निहित अधिकार है- यानी बहने का अधिकार, अपनी जैव विविधता का अधिकार, प्रदूषण मुक्त रहने का अधिकार, पुनर्जीवित होने और एक स्वस्थ जलभृत का अधिकार। अब कोई भी नागरिक इन अधिकारों को लागू कराने के लिए अदालत जा सकता है।

न्यूजीलैंड ने भी व्हंगानुई नदी को कानूनी दर्जा दिया है। माउंट तारानाकी को एक 8 सदस्यीय संरक्षक परिषद के माध्यम से कानूनी अभिभावकत्व दिया गया है, जिसमें चार सरकारी विशेषज्ञ और चार आदिवासी प्रतिनिधि शामिल हैंः इस परिषद की मंजूरी के बिना वहां कोई भी सरकारी या निजी परियोजना मंजूर नहीं की जा सकती। भारत में, उत्तराखंड हाईकोर्ट ने 2017 में गंगा को कानूनी अधिकारों के साथ 'एक जीवित इकाई' के रूप में मान्यता दी थी, लेकिन सुप्रीम कोर्ट द्वारा इस फैसले पर रहस्यमयी ढंग से रोक लगा दी गई और यह मामला अब भी अधर में लटका है।

पेरू और वेल्स के कानून केवल पेड़ों और जंगलों को अलग-थलग करके देखने के बजाय, पूरे पारिस्थितिकी तंत्र और जैव विविधता की सुरक्षा के महत्व को समझने की दिशा में एक छोटी सी शुरुआत हैं। उम्मीद करनी चाहिए कि हमारी सरकारें, अदालतें और एनजीटी इन घटनाक्रमों पर ध्यान देंगे, अपने सर्वज्ञानी होने के भ्रम को दूर करेंगे, और पारिस्थितिक मुद्दों के प्रति अपनी इस गहरी नींद, सुस्ती और समझ की कमी से जागेंगे। तभी और केवल तभी ड्रैगन फ्लाई शायद पुरानीकोटी लौटें और उस पर दावा कर पाएं जिन पर उनका कानूनी हक है। ■

अभय शुक्ला सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी हैं।
यह avayshukla.blogspot.com से लिए उनके लेख का संपादित रूप है

ADVERTISEMENT RATE CARD
w.e.f. 1 September 2025

NATIONAL HERALD ON SUNDAY संडे नवजीवन

The AJL Group has two weekly newspapers and three website portals in English, Hindi and Urdu
www.nationalheraldindia.com | www.navjivanindia.com | www.qaumiawaz.com

Commercial Display (w.e.f 1 Sept 2025)

Category of Advertisements (C/BW)	National Herald on Sunday (National Edition)	(Mumbai)	Sunday Navjivan (National Edition)
Full Page (1650 sq.cm)	Rs 10 Lakh	Rs 8 Lakh	Rs 10 Lakh
Half Page (800 sq. cm)	Rs 6 Lakh	Rs 5 Lakh	Rs 6 Lakh
Quarter Page (400 sq. cm)	Rs 4 Lakh	Rs 3 Lakh	Rs 4 Lakh
< Quarter Page (per sq. cm)	Rs 700	Rs 450	Rs 700

PAGE PREMIUM	Display Ads BW/Color	Political Ads BW/Color
Front page	100% Surcharge	200% Surcharge
page (3 & back)	25% Surcharge	100% Surcharge
Specified page	50% Surcharge	50% Surcharge

*Advance payment is needed for all political advertisements.

Classified for festival greetings, anniversary & notices
Full page @ Rs 1,00,000 | Half Page @ 60,000
< 240 sq. cm @ Rs 175 per sq. cm

State Govt Advertisements/ C/BW
@ Rs 525 per sq. cm

The Associated Journals Limited
Herald House, 5A, Bahadur Shah Zafar Marg,
New Delhi 110002
Phone: 011-47636300 - 313
Whatsapp No: 9650400932
Email: advt@nationalheraldindia.com

Online Remittance/Bank Beneficiary Details:
Name: Associated Journals Limited
Bank Name: Canara Bank
Branch Name: I P Estate, New Delhi-110002
C/A No.: 90171010003955; IFSC Code: CNRB0019017
GST No.: 27AAECA1180A1ZB ; PAN No.: AAECA1180A

NOTE: Cheque / DD should be drawn in favor of "Associated Journals Limited" and sent to Herald House, 5-A Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi -110002.

General Terms and Conditions
w.e.f. 1 September 2025
National Herald on Sunday (Delhi & Mumbai) and Sunday Navjivan

1. All advertisements are published in Edition(s) of the paper and charges are payable strictly in advance of publication by Bank Draft or Bank Transfer (RTGS) and /or cheques only except in the case of advertising agencies accredited to INS.

2. Advertisements are accepted for publication on top of advertisements positions on an additional charge of 25%. No advertisement is however published on top of news-matter.Top of column position cannot be guaranteed even on payment of additional charge of 25%.

3. Extra charges for top of column position are calculated on the total amount payable inclusive of amount payable for specified pages.

4. Every reasonable effort is made to publish an advertisement on the date(s) specified by an advertiser. The Management however reserves the right to vary the date or the scheduled date(s) of publication, with or without notice to the advertiser, owing to the exigencies of availability of spaces.

5. The management reserves the right to refuse, suspend or stop, in its discretion, publication of any advertisement without assigning any reasons.

6. While every endeavour will be made by the Management to avoid publication of competitive advertisements in close proximity to one another, no guarantee can be given in this respect nor will the claims be entertained for free insertions in the event of announcements of rival product appearing on the same page.

7. The placing of an order by an Advertiser/Advertising Agency constitutes a warranty by the Advertiser/Advertising Agency to the Associate Joumals Limited Management that the Advertiser/ Advertising Agency has secured the necessary authority and permission in respect of the use in the advertisement or advertisements of pictorial representation of (or purporting to be of) living persons and all references to words attributing to living persons.

8. The advertisements will be charged at the rate applicable on the day of publication of the advertisement irrespective of the date of booking, date of release order and whether the advertisement is part of any package/scheme.

9. Standing instructions are accepted over Whatsapp or email. However verbal instructions must be clear and specific. Quoting reference of the previous release order and/or new scheduled dates of insertions in respect of which the instructions are given. These instructions should be given afresh either through Whatsapp/email and/or Landline phone.

10 Booking of space for premium positions in all The Associated Journals Limited publications will be confirmed only upon receipt of original releaseorder. Fax/Scanned copies, Emails will be entertained for the same.

11. "Reader" advertisements are accepted but will be distinguished from 'news matter' by a rule around the advertisement matter and expression 'advt' will be added at bottom.

12. Solus/Semi Solus positions cannot be guaranteed on the front page.

13. Cancellation charges @20% of the total cost of the front/Full page advertisement shall be levied if a cancellation of booking is made two days before the scheduled date of publication. Cancellation charges @35% of the total cost of the full front-page advertisement shall be levied if the cancellation of a booking of front/full page advertisement is made one day before the scheduled date of the publication.

14. In the event of printing mistake, omission or non-publication of advertisement, the advertising agencies shall have to furnish the instructionson behalf of their client for republication. In the event of a dispute the liability of Management shall be restricted to the amount received against sale of spaces for the advertisement received. All disputes /claims regarding advertisement /complaints must be made within a period of one month of publication date after which no claim will be entertained.

15. The Management shall not be responsible for any loss or damage caused by an error or inaccuracy in the printing of/or omission in inserting advertisements.

16. In case of dispute, the agency shall not be entitled to invoke any condition suggestive of existence of an arbitration agreement unless specifically agreed to by the Management.

17. No deduction is allowed from bills raised against publication of advertisement(s) on account of any defective insertion(s). Any claims in these respects, if admitted, will be met by publishing a corrigendum/ free insertion or the like, depending upon the merits of the claim vis-a-vis the error in publishing the advertisement(s) or other materials. Claims for refund or for compensation, if admitted, shall be restricted to the charges for advertisement received by Management. The decision of the management shall be final in this regard.

18. The advertisements released by Government/Semi Government/ Undertakings/Autonomous body are published in classified display column only at commercial rates irrespective of the number of words.

19. The advertising agencies releasing an advertisement on behalf of its client shall be deemed to have undertaken to keep the management indemnified in respect of costs, damages or other charges incurred by the Management as a result of any legal action or threatened legal action arising from and in relation to publication of any advertisement published in accordance with the release order and the copy of instructions supplied by the agency.

20. The agency shall bring to the notice of its clients these General Terms and it shall not be open to any of its clients to plead/claim or aver ignorance of these General Terms which apply to every transaction of sale of space in particular issue(s) of any of publications of The Associated Joumals Limited.

21. No agency commission is payable on the on the classified advertisements chargeable at DAVP rates.

22. Fraction of centimetre in excess of the scheduled size shall be charged as full centimetre if the advertisement exceeds the scheduled size. If the material supplied is shorter than the scheduled size, the advertisement will be charged for the size scheduled and not for theactual space occupied or consumed by the advertisement on the basis of the short size material so supplied.

23. The Management shall not be bound by notice of stoporders, cancellations, preponements/postponements or alterations/deletions/ additions in the material(s) of advertisement(s) booked for publication in special or specified position if received less than one week prior to dates of insertion. For ordinary advertisement, the stoppage or not of cancellation must reach at least four days before the scheduled date of publication of advertisement.

24. The Management reserves the rights to revise the rates and terms and conditions without any notice.

25. Every Advertiser/Advertising Agency acknowledges having read and accepted these Terms and Conditions.

26. Courts only in New Delhi, shall have the jurisdiction to entertain and decide all disputes and claims, arising out of publication of any advertisement in the Associate Journals limited publications.

27. The Management shall be at liberty to refuse to carry advertisements/ adjust amounts paid for subsequent ads against pre-existing liabilities, even without carrying such subsequent advertisement.

28. Advertising party hereby agrees to indemnify, defend and hold harmless AJL, it's directors, officers, shareholders and agents against any and all third party claims arising out of or in connection with the content or placement of the advertisement, and to the fullest extent.

29. In no event shall AJL be liable hereunder for any indirect, incidental, special, consequential, punitive or exemplary damages or losses in connection with these terms even if advised in advance of the possibility of arising of such liability, damages or losses.

30. In no event shall AJL's aggregate liability exceed Rs. 10,000 to any advertising party.

नेतन्याहू के दौर में बच पाएगा इसराइल?

फोटो: गेटी इमेजेज

ईरानी बैलेस्टिक मिसाइल के हमले में बरबाद हुए इलाके में मीडिया से बात करते इसराइली प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू

अशोक स्वैन

इसराइल अपने 78 साला इतिहास के सबसे अहम चुनाव की ओर बढ़ रहा है। ऐसे में कभी कल्पना से भी परे रहा वह सवाल, अब देश के अंदर और बाहर खुलकर पूछा जा रहा है: क्या नेतन्याहू के दौर में इसराइल बच पाएगा?

सवाल महज इसराइल के सर्वाधिक लंबे समय तक प्रधानमंत्री रहे नेता के राजनीतिक भविष्य का नहीं, खुद इसराइल के भविष्य का है। नेतन्याहू के नेतृत्व में इसराइल अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहले से कहीं ज्यादा अलग-थलग पड़ चुका है। इंटरनेशनल क्रिमिनल कोर्ट (आईसीसी) का गिरफ्तारी वारंट भी उनपर तलवार की तरह लटका है। दुनिया के ज्यादातर हिस्सों, और सबसे बढ़कर, कभी इसराइल के पक्के सहयोगी रहे देशों में भी लोगों की राय नेतन्याहू और यहूदी बहुल देश (ज़ायनिस्ट) इसराइल के खिलाफ तेजी से बदली है। यहां तक कि सबसे अहम सहयोगी और मददगार रहा अमेरिका भी अब उसे लेकर बेचैन दिख रहा है।

नेतन्याहू आज दुनिया में सबसे ज्यादा नापसंद किए जाने वाले, नफरत का शिकार राजनेता हैं। यहां तक कि ईरान के खिलाफ साथ मिलकर काम करने वाले उनके सबसे करीबी अंतरराष्ट्रीय सहयोगी डॉनल्ड ट्रंप भी अब खुलेतौर पर उनकी आलोचना कर रहे हैं। लेबनान में इसराइली उकसावे वाले हमलों को लेकर हालिया मतभेदों ने रिश्तों में तो दरार डाली ही; ईरान से समझौते की अमेरिका की देर से शुरू हुई कोशिशों पर भी खतरा मंडराने लगा। उनके रिश्ते में भरोसे से ज्यादा निराशा हावी होती दिख रही है। दुनिया के प्रमुख नेताओं में, नरेन्द्र मोदी ही हैं जो अपने एक और 'अच्छे दोस्त' के समर्थन में अकेले खड़े नजर आते हैं।

इसी महीने जारी इसराइली टेलीविजन के एक सर्वे की मानें तो जनता अब नेतन्याहू के नेतृत्व से ऊबने लगी है। ज्यादातर इसराइली मानते हैं कि उनके रवैये ने शांति वार्ता को खतरे में डालकर इसराइली हितों को नुकसान पहुंचाया है।

इस बीच, नेतन्याहू ने 18 महीने से चल रहे भ्रष्टाचार के मामले में अपनी गवाही पूरी कर ली है, जिसमें उन पर रिश्वतखोरी, धोखाधड़ी, विश्वासघात के आरोप हैं। हालांकि, उनके नेतृत्व से जुड़े बड़े सवाल उनकी निजी छवि या कानूनी उलझनों से कहीं आगे तक जाते हैं। राजनीतिक रूप से जिंदा रहने की बेचैनी में, नेतन्याहू ने इसराइल की वैश्विक साख को बहुत नुकसान पहुंचाया है। उन्होंने न सिर्फ देश की दीर्घावधि सुरक्षा कमजोर की, रणनीतिक साझेदारियों को भी बहुत खोखला, या शायद पूरी तरह खत्म ही कर दिया है।

प्यू रिसर्च का ताजा सर्वे किसी भी इसराइली नीति-निर्माता को चिंतित करने को काफी होगा। 36 देशों में, औसतन 67 प्रतिशत लोग अब इसराइल के बारे में नकारात्मक राय रखते हैं। इसके कुछ सबसे करीबी पारंपरिक सहयोगियों सहित कई देशों में यह नकारात्मकता रिकॉर्ड स्तर पर है। नेतन्याहू पर भरोसा तो और भी कम है। यूरोप, उत्तरी अमेरिका, लैटिन अमेरिका और एशिया में ज्यादातर लोग उन पर बिलकुल भरोसा नहीं करते या बहुत कम। दुनिया भर में नेतन्याहू, इसराइल और बुराई का चेहरा बन गए हैं, और इसका असर देश की साख पर पड़ा है।

नुकसान महज साख के लिहाज से ही बुरा नहीं है। इसराइल की सुरक्षा उसकी सैन्य ताकत से कहीं ज्यादा उसकी वैधता, गठबंधनों और अंतरराष्ट्रीय सद्भावना पर निर्भर करती है, और नेतन्याहू के नेतृत्व ने ये सभी मोर्चे खोखले कर दिए हैं।

इसराइल अब भी अमेरिकी सैन्य मदद, संयुक्त राष्ट्र में कूटनीतिक सुरक्षा, खुफिया सहयोग और आर्थिक समर्थन पर बहुत ज्यादा निर्भर है। कई दशकों तक, इसराइल का समर्थन अमेरिकी राजनीति के उन चंद मुद्दों में से एक रहा जिन पर दोनों प्रमुख दलों में आम सहमति थी। अब वह सहमति टूट रही है। युवा अमेरिकी, पिछली पीढ़ियों की तुलना में इसराइल के प्रति ज्यादा नकारात्मक हैं। डेमोक्रेट्स के बीच इसराइल के प्रति समर्थन में भारी गिरावट आई है। अमेरिका के जाने-माने राजनेता इसराइल को मिलने वाली अमेरिकी सैन्य मदद और राजनयिक समर्थन के स्तर पर सवाल उठा रहे हैं।

अब कोई भी इसराइली नेता हालात के इस रुख से सहज तो नहीं ही महसूस करेगा। फिर भी, नेतन्याहू सत्ता और उससे मिलने वाली राजनीतिक सुरक्षा बनाए रखने के लिए इसराइल के सबसे अहम रणनीतिक रिश्ते को खतरे में डाल रहे हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि उनकी नजर में व्यक्तिगत रूप से सबसे बड़ा खतरा ईरान, हमास या हिज़्बुल्लाह नहीं, बल्कि शांति है। नेतन्याहू के लिए शांति राजनीतिक रूप से खतरनाक है, क्योंकि इससे जवाबदेही की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी। और शांति नाकामियां उजागर कर देगी। शांति से लोगों का ध्यान बाहरी दुश्मनों से हटकर उस व्यक्ति पर केन्द्रित हो जाएगा, जो लगभग दो दशकों तक इसराइली राजनीति पर हावी रहा है।

इस साल के आखिर में जब इसराइल में वोटिंग होगी, वहां के लोग अपना सपना बनाए रखने की कीमत पर विचार करेंगे। इसराइल का भविष्य इस पर निर्भर करेगा कि क्या देश उस व्यक्ति से आगे बढ़ पाता है जो उसे मौजूदा दुश्वारियों तक पहुंचाने का जिम्मेदार है

यही वह सच्चाई है जो नेतन्याहू को ट्रंप को चुनौती देने और उनकी बात न मानने की हिम्मत दे रही है। सालों तक, नेतन्याहू एक के बाद एक अमेरिकी सरकारों को ईरान के साथ टकराव की ओर धकेलते रहे। उन्होंने कूटनीति का विरोध किया, बातचीत की आलोचना की और तेहरान के साथ किसी भी तरह के समझौते को इसराइल के अस्तित्व के लिए खतरा बताया। ट्रंप दोबारा सत्ता में आए, तो नेतन्याहू को लगा कि उन्हें आखिरकार एक ऐसा अमेरिकी राष्ट्रपति मिल गया, जो 'अधिकतम दबाव' और 'सैन्य तनाव बढ़ाने' की उनकी सोच अपनाने को तैयार है।

इसके बाद ईरान के साथ हुई लड़ाई ने नेतन्याहू के लंबे समय से चले आ रहे नजरिये को सही साबित किया। लेकिन जैसे-जैसे उन्हें तनाव बढ़ने से होने वाले नुकसान और जोखिमों का एहसास होने लगा, ट्रंप बाहर निकलने का रास्ता (एक्जिट स्ट्रेटेजी) तलाशने लगे। तेहरान के साथ शांति समझौते, इलाके में कुछ हद तक स्थिरता लाने और एक खतरनाक टकराव खत्म करने का श्रेय लेने की संभावना जैसे सपने शायद ट्रंप के दिमाग में फिर से पनपने लगे हैं।

दूसरी ओर, नेतन्याहू के लिए ईरान के साथ अमेरिका का शांति समझौता उस असल राजनीतिक नैरेटिव को कमजोर कर देगा जो वह दशकों से गढ़ते आए हैं। इससे 'स्थायी आपातकाल' वाली सोच कमजोर होगी, जिस पर उनकी राजनीतिक अहमियत टिकी है। अहम बात यह कि इससे इसराइली लोग ईरान के बजाय फिर से नेतन्याहू पर ध्यान देने लगेंगे, जबकि ईरान को नेतन्याहू ने अपनी राजनीति में 'अस्तित्व के लिए खतरा' बताया है।

इससे पता चलता है कि क्यों नेतन्याहू हमेशा कूटनीतिक बातचीत नाकाम करने की कोशिश में रहे, और यह भी कि इसराइल ने गाजा में सैन्य कार्रवाई क्यों जारी रखी है, क्यों वेस्ट बैंक में हमले तेज कर रहा है और लेबनान में अपनी सैन्य मौजूदगी बनाए हुए है- जबकि उसका सबसे मजबूत रणनीतिक सहयोगी इलाके में तनाव कम करना चाहता है।

नेतन्याहू शांति से डरते हैं क्योंकि इलाके में शांति का मतलब होगा देश के भीतर फोकस का केन्द्र बदलना; तब सारा फोकस इसराइल के इतिहास के सबसे घातक हमले और उस नेता की लीडरशिप पर चला जाएगा, जिसने सुरक्षा के दम पर अपनी पहचान बनाई थी। इसराइली लोग उन सुरक्षा खामियों पर सवाल उठाएंगे जिनकी वजह से 7 अक्तूबर 2023 के हमले हो पाए। वे पूछेंगे कि बंधकों को पहले घर क्यों नहीं लाया जा सका, और गाजा में नरसंहार के बाद भी कोई राजनीतिक समाधान क्यों नहीं नजर आ रहा। वे यह भी जान चुके होंगे कि इसराइल के दुनिया भर में अलग-थलग पड़ने के लिए कौन जिम्मेदार था।

एक ऐसा राजनीतिक करियर जो हर कीमत पर इसराइल की रक्षा करने की बेमिसाल साख और 'ग्रेटर इसराइल' बनाने के ज़ायोनी भू-राजनीतिक सपने- यानी एक ऐसे यहूदी देश की कल्पना जिसकी सीमाएं इसराइल के मौजूदा इलाके से कहीं आगे तक फैली हों- पर टिका था, अब बिखर रहा है। हमें उस प्रोजेक्ट के इंचार्ज की तरफ से की जा रही वह बेताब कोशिशें साफ दिख रही हैं, जिनका मकसद लोगों की सोच में उस कल्पना को किसी भी तरह जीवित रखना है।

इस साल के आखिर में जब इसराइल में वोटिंग होगी, वहां के लोग यह सपना बनाए रखने की कीमत पर विचार करेंगे। इस बात पर सोचेंगे कि देश अपनी विश्वसनीयता एक बार फिर कैसे हासिल कर सकता है, गठजोड़ को किस तरह ठीक कर सकता है और दुनिया में अपनी जगह वापस कैसे पा सकता है। इसराइल का भविष्य इस बात पर निर्भर कर सकता है कि क्या देश उस व्यक्ति से आगे बढ़ पाता है जो उसे मौजूदा दुश्वारियों तक पहुंचाने का जिम्मेदार है। ■

अशोक स्वैन स्वीडन की उप्साला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं

ब्रिटेन के पीएम की कुर्सी अंगारों का ताज क्यों?

ब्रिटेन के राजनीतिक उथल-पुथल ने 10 सालों में छह प्रधानमंत्रियों की विदाई देखी। देखना होगा कि चुनाव से पहले क्या यह सूची और लंबी होगी

फोटो: गेटी इमेजेज

डाउनिंग स्ट्रीट के बाहर प्रधानमंत्री और लेबर पार्टी के नेता के पद से इस्तीफे का ऐलान करते केर स्टार्मर

आशीष रॉय

एक दशक में सात प्रधानमंत्री (जैसा कि ब्रिटेन में अब होने ही वाला है) राजनीतिक अस्थिरता का एक बहुत बड़ा प्रमाण है। ब्रिटेन इस समय अपने अंतर्विरोधों से जूझ रहा है और इसी का नतीजा है कि वहां की सरकारें बेहद कम समय के लिए टिक पा रही हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से, क्लेमेंट एटली, विंस्टन चर्चिल, हेरोल्ड विल्सन (बीच में एक मध्यावधि चुनाव के साथ छह साल तक), मार्गरेट थैचर (11 साल तक), जॉन मेजर (बीच में एक चुनाव के साथ सात साल तक), टोनी ब्लेयर (स्वेच्छा से पद छोड़ने से पहले एक दशक तक) और डेविड कैमरन ही प्रधानमंत्री के रूप में पांच साल या उससे अधिक रह सके।

साल 2015 में दोबारा चुने जाने के बाद, कैमरन ने अपने चुनावी घोषणापत्र के उस वादे को आगे बढ़ाया जिसमें यूरोपीय संघ में ब्रिटेन की सदस्यता पर जनमत संग्रह कराने की बात कही गई थी। 1980 के दशक से ही उनकी कंजर्वेटिव पार्टी में यह एक बेहद चर्चित मुद्दा रहा था। संशयवादियों के बीच खुद एक यूरोप-समर्थक राजनेता होने के नाते, कैमरन को पूरा भरोसा था कि उनकी लोकप्रियता इस मामले को हमेशा के लिए शांत कर देगी। लेकिन उन्हें एक बहुत बड़ा झटका लगने वाला था।

इस मतदान ने न केवल उनकी पार्टी और सरकार को, बल्कि पूरे देश को दो धड़ों में बांट दिया। कैमरन ने अपनी ही पार्टी के सहयोगी बोरिस जॉनसन और उनके साथ हाथ मिलाने वाले अति-राष्ट्रवादी गुट से मिलने वाली चुनौती को बहुत कम करके आंका था। उन्होंने इस तथ्य पर भी ध्यान नहीं दिया कि मुख्य विपक्षी लेबर पार्टी के नेता जेरेमी कॉर्बिन 1970 के दशक के उस वामपंथी दौर से आते थे जो 'यूरोपीय कॉमन मार्केट' (जैसा कि तब ईयू को जाना जाता था) के सख्त विरोधी थे। कॉर्बिन ने आधिकारिक तौर पर तो 'ईयू में बने रहने' के अभियान का समर्थन किया, लेकिन वह बेहद आधे-अधूरे मन से किया गया प्रयास था।

फैसला आया: ब्रेक्सिट! (यूरोपीय संघ से बाहर होना)

जून 2016 में, कैमरन ने प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। थेरेसा मे उनकी उत्तराधिकारी बनीं, लेकिन बार-बार उनकी ही पार्टी के सांसदों ने हाउस ऑफ कॉमन्स में ब्रेक्सिट विधेयकों को पारित होने से रोक दिया। उन्हें नाकाम करने की इन तमाम चालबाजियों के पीछे बोरिस जॉनसन का हाथ था। आखिरकार मे को भी पद छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा।

ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को ब्रेक्सिट के बाद से भारी नुकसान हुआ है, जिसकी भरपाई किसी अन्य देश या ब्लॉक के साथ मुक्त व्यापार समझौते से नहीं की जा सकती। ब्रिटेन फिलहाल अपने अंतर्विरोधों से लड़ रहा है

एक तरह से तख्तापलट की पटकथा लिखने के बाद, जॉनसन ने 2019 की गर्मियों में प्रधानमंत्री का पद संभाला। उसी साल दिसंबर में, उन्होंने 'गेट ब्रेक्सिट डन' (ब्रेक्सिट को पूरा करो) के नारे पर मध्यावधि चुनाव करा दिए। ब्रिटिश मतदाताओं ने इस नारे को हाथों-हाथ लिया और उन्हें शानदार जनादेश दे दिया। जॉनसन ने ब्रेक्सिट तो पूरा कर दिया, लेकिन जल्दबाजी में किया गया उनका यह सौदा ब्रिटेन के लिए थेरेसा मे द्वारा प्रस्तावित या बातचीत के जरिए तय किए गए किसी भी विकल्प से कहीं ज्यादा नुकसानदेह साबित हुआ। उनकी उत्तराधिकारी लिज ट्रस महज 49 दिन टिक सकीं, जिन्हें एक बेहद विनाशकारी बजट लाने के बाद बाहर का रास्ता दिखा दिया गया। इस बजट ने ब्रिटेन के बॉन्ड बाजारों को इस तरह अस्थिर कर दिया कि एसएंडपी और फिच जैसी रेटिंग एजेंसियों से 'एए' की सॉवरेन रेटिंग होने के बावजूद ब्रिटिश अर्थव्यवस्था पूरी तरह ढहने के कगार पर पहुंच गई। जब इस पद को संभालने वाला कोई नहीं बचा, तो महज सात साल से सांसद रहे एक नए राजनेता ऋषि सुनक ने इस खालीपन को भरा। वह जॉनसन की सरकार में वित्त मंत्री रहे थे, लेकिन उन्होंने उस बगावत में इस्तीफा दे दिया था जिसने जॉनसन को सत्ता से बेदखल किया।

सुनक ने डगमगाती नाव को संभाला और 20 महीने तक कमान संभाले रखी। लेकिन वह ब्रिटिश जनता के दिलों पर कोई खास छाप नहीं छोड़ सके। परिणाम वही हुआ जिसकी उम्मीद थी- जब उन्होंने जुलाई 2024 में चुनाव कराए, तो वह और उनकी कंजर्वेटिव पार्टी पूरी तरह साफ हो गए।

इस म्यूजिकल चेयर के खेल के दौरान-जहां छह साल में पांच प्रधानमंत्री बदल गए-लेबर पार्टी ने 2019 में कॉर्बिन के नेतृत्व में मिली अपनी सबसे करारी हार से उबरते हुए ऐतिहासिक जीत दर्ज की। उन्होंने 650 सीटों वाले सदन में 400 से अधिक सांसदों का आंकड़ा हासिल किया, जो 1997 में टोनी ब्लेयर के नेतृत्व में बने रिकॉर्ड के बाद सबसे बड़ी जीत थी। एक बैरिस्टर और ब्रिटेन की क्राउन प्रोसिक्यूशन सर्विस के पूर्व प्रमुख कीर स्टार्मर ने इसे मुमकिन बनाया, लेकिन वह भी दो साल से भी कम समय में पकड़ खो बैठे।

ब्रिटेन के दक्षिणपंथी समाचार मीडिया ने पहले ही दिन से उनके खिलाफ मोर्चा खोल दिया था। स्टार्मर ने भी कुछ अलोकप्रिय नीतियां लागू करके अपने लिए मुश्किलें खड़ी कर लीं, जिससे बुजुर्ग और बच्चे प्रभावित हुए। नियोक्ताओं द्वारा नेशनल इंश्योरेंस में दिए जाने वाले योगदान को बढ़ाने का उनका फैसला भी जनता को रास नहीं आया। इसके अलावा, अमेरिका में ब्रिटिश राजदूत के रूप में पीटर मेंडेलसन-जो एक विवादास्पद लेबर दिग्गज हैं और जिनके संबंध बाल यौन शोषण के दोषी जेफरी एप्स्टीन से रहे थे- का चयन स्टार्मर के कार्यकाल का सबसे गंभीर राजनीतिक संकट बन गया।

हालांकि स्टार्मर के नेतृत्व में, सरकारी स्कूलों की शिक्षा और नेशनल हेल्थ सर्विस - जो ब्रिटेन में सरकारी प्रदर्शन के सबसे महत्वपूर्ण पैमाने हैं-में काफी सुधार हुआ। प्रवासन में भी रिकॉर्ड गिरावट दर्ज की गई, जो गोरे कामकाजी वर्ग के ब्रितानियों के साथ-साथ कुछ भारतीय मूल के प्रवासियों के बीच भी एक बेहद संवेदनशील मुद्दा रहा है, और जिसने धुर दक्षिणपंथी 'रिफॉर्म यूके' पार्टी के उभार को हवा दी थी।

महंगाई कम हुई लेकिन अर्थव्यवस्था रफ्तार नहीं पकड़ सकी। बेरोजगारी बढ़ गई और मजदूरी में कोई खास इजाफा नहीं हुआ। 'कॉस्ट ऑफ लिविंग' देश का मुख्य विमर्श बन गया। स्टार्मर एक बड़ा गेम-चेंजर कदम उठाने के बेहद करीब थे-जुलाई में होने वाला यूके-ईयू शिखर सम्मेलन, जिसमें व्यापार के लिए एकल बाजार पर चर्चा होनी थी। ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को ब्रेक्सिट के बाद ऐसे नुकसान झेलने पड़े हैं, जिनकी भरपाई किसी अन्य देश या ब्लॉक के साथ मुक्त व्यापार समझौते से नहीं की जा सकती।

स्टार्मर एक सुरक्षित और सुलझे हुए नेता तो हैं, लेकिन उनमें करिश्मा और संवाद कौशल की भारी कमी है। उनकी सरकार अपनी उपलब्धियों को ब्रिटिश जनता तक पहुंचाने में पूरी तरह नाकाम रही। पिछले महीने के स्थानीय और क्षेत्रीय चुनावों के नतीजों के बाद, दीवार पर लिखी इबारत बिल्कुल साफ थी। मई 2026 के एक यूगॉव पोल में दिखाया गया कि 69 फीसद लोग स्टार्मर को नापसंद करते हैं।

उनके सांसदों को अहसास हो गया था कि अगर स्टार्मर प्रधानमंत्री बने रहे तो ऐसी रेटिंग के साथ लेबर पार्टी न तो 'रिफॉर्म यूके' के गंभीर खतरे से निपट पाएगी, और न 'ग्रीन पार्टी' से (जिसने अपने स्पष्ट फिलिस्तीन-समर्थक रुख के कारण कट्टर वामपंथियों और मुस्लिम मतदाताओं के वोट अपनी तरफ खींच लिए थे) और 2029 का अगला चुनाव जीतना नामुमकिन हो जाएगा।

इसलिए, पिछले हफ्ते तक उत्तर-पश्चिम इंग्लैंड में ग्रेटर मैनचेस्टर के लोकप्रिय मेयर रहे और अब उपचुनाव में जीतकर संसद (कॉमन्स) पहुंचे एंडी बर्नहैम, स्टार्मर की जगह लेने के सबसे बड़े दावेदार बनकर उभरे हैं। इसके साथ ही वह 10 साल में ब्रिटेन के सातवें प्रधानमंत्री बन जाएंगे। क्या अगले आम चुनाव से पहले ब्रिटेन के प्रधानमंत्रियों की यह लंबी कतार और लंबी होगी? नजर बनाए रखिए... ■

मोदी अपने आपातकाल के लिए माफी मांगेंगे?

भले सरकार की ओर से बेहद खतरनाक माहौल बना दिया गया है, संघ परिवार डर दिखाने की हरसंभव कोशिश में लगा रहता है

कृष्ण प्रताप सिंह

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके आनुषंगिक संगठन पहले भी 'सूप बोले तो बोले, छलनी भी बोले' वाली कहावत को कुछ कम सार्थक नहीं करते रहे हैं, लेकिन नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्रित्व के बारह वर्षों में उन्होंने अपनी इस परंपरा को कुछ ज्यादा ही समृद्ध कर दिया है। तभी तो जून का तीसरा हफ्ता शुरू होता ही इक्यावन साल पहले 25 जून 1975 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा देश की आंतरिक सुरक्षा को अंदेशों की बिना पर लगाए गए आपातकाल को याद दिलाना और उसका डर दिखाना शुरू कर देते हैं। कभी-कभी एक विद्वान का यह कथन भी दोहराते हैं (बेशक, लोगों को डराने के लिए ही) कि जिन लोगों में इतिहास के सबक भूलने की प्रवृत्ति होती है, वे उन्हें दोहराने के लिए अभिशप्त होते हैं।

लेकिन ऐसा करते हुए वे उस आपातकाल का यह सच उससे नावाकिफ लोगों तक जानबूझकर (कहना चाहिए, इरादतन) नहीं पहुंचने देते कि श्रीमती गांधी ने 23 जनवरी, 978 को उसके लिए सार्वजनिक रूप से और बिना शर्त माफी मांग ली थी। तब, जब महाराष्ट्र विधानसभा के चुनाव हो रहे थे और वे अपनी उसी महीने में गठित नई पार्टी कांग्रेस (इ) के प्रत्याशियों के प्रचार के लिए यवतमाल पहुंची थीं। वहां एक सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने उस आपातकाल से जुड़ी सभी ज्यादतियों और गलतियों की पूरी जिम्मेदारी लेते हुए कहा था कि भले ही अन्य जिम्मेदार लोग अपनी गलतियां स्वीकार करने को तैयार न हों, मैं उनकी जिम्मेदारी लेती हूं। आपातकाल को उस दौर की बीमारियों के इलाज के लिए दी गई दवा बताते हुए उन्होंने कहा था कि वह निस्संदेह सुखद नहीं था, लेकिन उसके बाद 'चुनाव कराने में हमने सभी लोकतांत्रिक सिद्धांतों का पालन किया। हमसे हुई गलतियों को लेकर नाराज देश की जनता ने हमारे खिलाफ फैसला दिया तो हमने उसके फैसले को भी विनम्रता से स्वीकार किया।'

अंग्रेजी दैनिक इंडियन एक्सप्रेस ने अपने 24 जनवरी 1978 के अंक में उनके माफी मांगने की खबर को विस्तार से छापा था और चूंकि माफी से बड़ी कोई सजा होती ही नहीं, खासकर तब, जब जिससे वह मांगी गई हो, उसने उसे स्वीकार कर लिया हो (गौरतलब है कि देशवासियों ने उसे स्वीकार करके दो ही साल बाद हुए लोकसभा के मध्यावधि चुनाव में उनको फिर से देश की सत्ता सौंप दी थी), इसलिए कायदे से होना यह चाहिए था कि उसके बाद इस मामले को हमेशा के लिए खत्म मान लिया जाता।

लेकिन संघ परिवार उसे अब तक मोदी सरकार द्वारा किसी औपचारिक घोषणा के बगैर ही देशवासियों पर पूर्ण-विकसित अधिनायकवाद का पर्याय बनाकर थोप दिए गए आपातकाल की ओर से देशवासियों का ध्यान हटाने का उपकरण बनाकर इस्तेमाल करता आ रहा है।

लेकिन आज हम देख रहे हैं कि पूर्ण अधिनायकवाद के अभ्यासी सत्ताधीश निर्लज्ज होकर बिना किसी अपराधबोध के हमारी इस बेबसी का जश्न मनाने से भी संकोच नहीं कर रहे कि उस आपातकाल को अगले ही चुनाव में धूल चटाकर हमने छीने गए अपने सारे मौलिक अधिकारों सहित 'दूसरी आजादी' प्राप्त कर ली थी, लेकिन वर्तमान अघोषित आपातकाल के शिकंजे से लगातार तीसरे चुनाव के बाद भी बाहर नहीं निकल पाए हैं। न ही अपने सपनों के लोकतंत्र की पुनर्प्राप्ति का मार्ग ही प्रशस्त कर पाए हैं। उल्टे कई मायनों में उसके अंधेरों को बढ़ते देखने को ही अभिशप्त हैं।

इस अघोषित आपातकाल के पीछे उसके अलंबरदार संघ और उसके परिवार की है। कांग्रेस का जहां आजादी की लड़ाई और संविधान निर्माण दोनों से गहरा जुड़ाव रहा है, संघ परिवार इन दोनों से बहुत दूर रहा है। उसने अपने इतिहास में कभी भी कोई लोकतांत्रिक संघर्ष चलाकर उसे मंजिल तक नहीं पहुंचाया है। उस आपातकाल से पहले की सत्ता गरीबी हटाओ का नारा लगाती थी और बैंकों के राष्ट्रीयकरण, राजाओं-महाराजाओं के प्रिवी पर्स के उन्मूलन और बांग्लादेश की मुक्ति जैसे प्रगतिशील कदम उसके एजेंडे पर रहा करते थे।

मोदी और संघ परिवार को अपने गिरेबान में झांकने की आदत होती, तो वे महसूस कर पाते कि अब देशवासी समझने लगे हैं कि इनलोगों ने संविधानविरोधी धत्कर्मों को अपनी सत्ता की ढाल बना लिया है

दूसरी ओर मोदी अपनी सत्ता के आरंभ से ही उस आपातकाल को तो कांग्रेस द्वारा संविधान पर लगाया गया सबसे बड़ा काला धब्बा बताते आ रहे हैं, लेकिन संघ परिवार के उस अंध संविधानविरोध की ओर से लगातार आंखें मूंदे रखते हैं, जो संविधान बनने से पहले से ही जारी है।

उनको और संघ परिवार को अपने गिरेबान में झांकने की जरा-सी भी आदत होती तो वे साफ-साफ महसूस कर पाते कि अब देशवासी समझने लगे हैं कि इस दौरान उनके द्वारा उस आपातकाल को कोसते हुए किस तरह उससे कई गुना ज्यादा संविधानविरोधी धत्कर्मों को अपनी सत्ता की ढाल बना लिया गया है।

इसकी सबसे बड़ी मिसाल उनका बहुसंख्यकवादी एजेंडे की आड़ में देशवासियों पर इमोशनल अत्याचार करते हुए अपने पक्ष में यह सहूलियत हासिल कर लेना है कि संविधान के मूल्यों से खेलते रहने के बावजूद उनकी झोली वोटों से भरती रहे और वे संविधान दिवस मनाकर उसके रक्षक होने की डींग भी हांक सकें। भले ही देश में जीवंत लोकतंत्र सुनिश्चित करने और संविधान में उल्लिखित आम आदमी के सपने पूरे करने की जिम्मेदारी को लगातार धोखे में रखना पड़ जाए।

भारत में अधिनायकवादी बदलाव का नेतृत्व संघ ने किया है, जो सांप्रदायिक हिन्दुत्व की जहरीली विचारधारा को बढ़ावा देकर भारत के मूल विचार को मौलिक रूप से बदलने का प्रयास करता है। भारत के विचार पर वर्तमान हमले का उद्देश्य भारतीय नागरिकता के मूलभूत सिद्धांतों को नष्ट करना है।

निस्संदेह, इस हमले के बीज संघ परिवार के उस संविधान विरोध में ही हैं, जिसे उसके परिवारी 1975 के आपातकाल की आलोचना की आड़ में छिपाते रहते हैं। वे चाहते हैं कि देश उस आपातकाल के संविधानविरोध को तो याद रखे, लेकिन यह भूल जाए कि संघ ने संविधान को उसके बनने से पहले ही लांक्षित करना शुरू कर दिया था।

उनके 'गुरु जी' (माधव सदाशिव गोलवलकर) का मानना था कि हमारा संविधान पश्चिमी देशों के संविधानों से लिए गए विभिन्न अनुच्छेदों का भारी-भरकम तथा बेमेल अंशों का संग्रह मात्र है। उसमें ऐसा कुछ नहीं है जिसे हम अपना कह सकें। जिस समय भारतीय संविधान बन रहा था, गोलवरकर ही सर संघचालक और मार्गदर्शक थे और इसको लेकर नाराज थे कि जब हमारे यहां 'मनुस्मृति' जैसा हिन्दू न्यायशास्त्र एवं विधि व्यवस्था का सम्पूर्ण रूप मौजूद है, तो हमें संविधान के लिए अन्य जगह जाने की क्या जरूरत है?

30 नवंबर 1948 को उन्होंने संघ के मुखपत्र 'आर्गनाइजर' में लिखा था- 'हमारे संविधान में प्राचीन भारत में हुए अनोखे संवैधानिक विकास का कोई जिक्र नहीं है।... मनुस्मृति में दर्ज कानूनों की आज भी दुनिया भर में प्रशंसा होती है और वे लोगों के बीच स्वतःस्फूर्त आज्ञाकारिता और अनुशासन जगाते हैं। लेकिन हमारे संवैधानिक पंडितों के लिए इन तथ्यों का कोई मतलब नहीं है।

1956 में राज्य पुनर्गठन आयोग का प्रतिवेदन प्रकाशित होने पर गोलवलकर ने एक लेख लिखा था- 'एकात्मक शासन की अनिवार्यता'। इसमें उन्होंने लिखा था-'हम अपने देश के संविधान से सांघिक ढांचे की संपूर्ण चर्चा को सदैव के लिए समाप्त कर दें। एक राज्य के अर्थात भारत के अंतर्गत अनेक स्वायत्त अथवा अर्द्धस्वायत्त राज्यों के अस्तित्व को मिटा दें तथा एक देश एक राज्य एक विधानमंडल, एक कार्यपालिका, घोषित करें। इसमें खंडात्मक, क्षेत्रीय सांप्रदायिक भाषाई अथवा अन्य प्रकार के गर्व का चिन्ह नहीं होना चाहिए।'

उनका मत था कि हमारा वर्तमान संसदीय ढांचा पृथकतावाद को उत्पन्न और पोषित करने वाला है। एक प्रकार से यह राष्ट्रवाद के सत्य को नकारता है, अतः विभाजक प्रवृत्ति का है। इसका उपचार परम आवश्यक है। एकात्मक शासन की स्थापना के लिए संविधान में संशोधन किया जाना चाहिए और मार्ग के समस्त अवरोधों को समाप्त कर डालना चाहिए।

वह संविधान निर्माताओं के राष्ट्रवाद और संविधान के संघात्मक ढांचे को लेकर भी शंकालु थे। साथ ही इस बात के आलोचक थे कि संविधान में देश को राज्यों के संघ के रूप में वर्णित किया गया है। जो पूर्व व्यवस्था के अंतर्गत केवल प्रान्त माने जाते थे, उनको अब अनन्य अधिकारों के साथ राज्य का दर्जा दे दिया गया है।

वह इस बात को भी नहीं मानते थे कि लोकतंत्र की भावना की संतुष्टि के लिए ज्यादा प्रांतीय विधानसभाओं का होना आवश्यक है। उनका मानना था कि लोकतंत्र और बहुविधायिका (राज्यों में विधानमंडल और केन्द्र में संसद) में कोई संबंध नहीं है। एक केन्द्रीय व्यवस्थापिका (संसद) संपूर्ण देश की लोकतंत्रीय भावना को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त है। राष्ट्र एक है, जन एक हैं, अतः सरकार एवं विधायिका भी एक होनी चाहिए।

भारत की संविधान सभा द्वारा तिरंगे झंडे की राष्ट्रध्वज के रूप में स्वीकृति को वह उसकी प्रवाहपतिता तथा परानुकरणता मानते थे। उनके अनुसार तिरंगा किसी राष्ट्रीय दृष्टिकोण अथवा राष्ट्रीय इतिहास और परंपरा पर आधारित या उनसे प्रेरित नहीं। 'आर्गनाइजर' के 7 जुलाई 1947 के अंक में प्रकाशित 'नेशनल फ्लैग' शीर्षक संपादकीय में मांग की गई थी कि तिरंगे की जगह भगवाध्वज को राष्ट्रीय झंडा बनाया जाए, क्योंकि वही हिन्दुस्तान का सच्चा राष्ट्रीय झंडा हो सकता है। राष्ट्र को सिर्फ वही मान्य होगा।

सोचिए जरा कि ऐसे में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की उस आपातकाल पर प्रायः बरसते रहने की कला को क्या कहा जाए और किस रूप में लिया जाए। यह क्यों न पूछा जाए कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी अपने वर्तमान आपातकाल के लिए कभी माफी मांगेंगे? ■

फोटो: गेटी इमेजेज

किसान आंदोलन के दौरान सरकार के रवैये से साफ ही हो गया था कि सत्ता विरोध से किस तरह निबटती रहेगी

गाजा दुनिया की सबसे भयावह मानवीय त्रासदी

युद्ध, विस्थापन, भूख, भय और बमबारी के बीच चिकित्सा व्यवस्था का ध्वस्त हो जाना जीवन के लिए बड़ा खतरा

शैलेन्द्र चौहान

गाजा केवल एक भू-राजनीतिक संघर्ष का क्षेत्र नहीं रह गया है। वह आधुनिक विश्व की सबसे भयावह मानवीय त्रासदी बन चुका है। युद्ध, विस्थापन, भूख, भय और लगातार हो रही बमबारी के बीच चिकित्सा व्यवस्था का लगभग ध्वस्त हो जाना लाखों लोगों के जीवन के लिए सीधा खतरा बन गया है।

गाजा के स्वास्थ्य मंत्रालय ने आरोप लगाया है कि 16,500 से अधिक गंभीर रूप से बीमार फिलिस्तीनी इलाज के लिए विदेश या अन्य क्षेत्रों में जाने की अनुमति न मिलने के कारण जीवन और मृत्यु के बीच फंसे हुए हैं। यह केवल प्रशासनिक समस्या नहीं है। यह उस व्यापक संकट का हिस्सा है जिसमें युद्ध और नाकेबंदी ने मनुष्य के जीवन और उपचार जैसे सबसे बुनियादी अधिकार को भी असुरक्षित बना दिया है।

अक्तूबर 2023 में शुरू हुए युद्ध के बाद से लगातार बमबारी, जमीनी हमले और सैन्य कार्रवाइयों ने न केवल घरों, सड़कों और स्कूलों को नष्ट किया, बल्कि अस्पतालों और स्वास्थ्य केन्द्रों को भी गहरे संकट में डाल दिया। संयुक्त राष्ट्र और कई अंतरराष्ट्रीय मानवीय संगठनों ने आरोप लगाया कि स्वास्थ्य संरचना को व्यवस्थित रूप से नष्ट किया गया। अस्पतालों पर हमले हुए, बिजली और ईंधन की आपूर्ति बाधित हुई, दवाइयों और चिकित्सा उपकरणों की भारी कमी पैदा हुई और हजारों घायल लोगों के बीच डॉक्टरों और नर्सों को लगभग असंभव परिस्थितियों में काम करना पड़ा।

युद्ध की सबसे बड़ी त्रासदी यही होती है कि वह मनुष्य को बस आंकड़ों में बदल देता है। समाचारों में मृतकों और घायलों की संख्या दिखाई देती है, लेकिन उनके भीतर छिपे जीवन, परिवार, रिश्ते और सपने अदृश्य हो जाते हैं। गाजा में भी यही हुआ।

गाजा का स्वास्थ्य संकट लंबे समय से चली आ रही नाकेबंदी, सीमित संसाधनों और राजनीतिक अस्थिरता का परिणाम भी है। वर्षों से गाजा बाहरी दुनिया से लगभग कटा हुआ रहा है। आवश्यक दवाइयों, उपकरणों और विशेषज्ञ चिकित्सकों तक पहुंच पहले से ही सीमित थी। युद्ध ने इस संकट को कई गुना बढ़ा दिया। हजारों लोगों को कैंसर, हृदय रोग, गुर्दा रोग या जटिल सर्जरी के लिए गाजा से बाहर इलाज की आवश्यकता है। पहले भी उन्हें विशेष अनुमति लेकर मिस्र, जॉर्डन या अन्य देशों में जाना पड़ता था, लेकिन अब सीमा पार मार्गों पर सख्त नियंत्रण और बार-बार बंदी के कारण यह लगभग असंभव हो गया है।

रफा सीमा पार मार्ग, जो मिस्र के रास्ते गाजा के लोगों के लिए दुनिया तक पहुंच का प्रमुख द्वार था, लंबे समय तक बंद रहा। बाद में आंशिक रूप से खुलने के बावजूद वहां से सीमित लोगों को ही निकलने दिया गया। चिकित्सा निकासी के लिए भी बेहद कम अवसर उपलब्ध कराए गए। परिणाम यह हुआ कि हजारों मरीज अस्पतालों और अस्थायी शिविरों में उपचार की प्रतीक्षा करते रह गए। जिन बच्चों को तत्काल ऑपरेशन की आवश्यकता थी, जिन गर्भवती महिलाओं को विशेष चिकित्सा सुविधा चाहिए थी, जिन घायल लोगों को पुनर्वास और कृत्रिम अंगों की जरूरत थी — वे सब धीरे-धीरे एक ऐसे जाल में फंस गए जहां समय ही उनका सबसे बड़ा शत्रु बन गया।

युद्ध की सबसे बड़ी त्रासदी यही होती है कि वह मनुष्य को आंकड़ों में बदल देता है। समाचारों में मृतकों और घायलों की संख्या दिखाई देती है, लेकिन उनके भीतर रिश्ते और सपने अदृश्य हो जाते हैं। गाजा में भी यही हुआ

युद्ध और नाकेबंदी का प्रभाव केवल घायल लोगों तक सीमित नहीं रहता। जब अस्पताल नष्ट होते हैं और स्वास्थ्य व्यवस्था चरमरा जाती है, तब सामान्य बीमारियां भी घातक बनने लगती हैं। स्वच्छ पानी की कमी, कुपोषण, भीड़भाड़ वाले राहत शिविर और खराब स्वच्छता व्यवस्था संक्रामक रोगों को जन्म देती हैं। बच्चों में कुपोषण बढ़ता है, गर्भवती महिलाओं और नवजात शिशुओं की मृत्यु दर बढ़ती है, मानसिक स्वास्थ्य संकट गहराता है। गाजा में आज यही स्थिति दिखाई दे रही है। हजारों लोग लगातार भय, विस्थापन और असुरक्षा के बीच जी रहे हैं। युद्ध केवल शरीर को घायल नहीं करता, वह मनुष्य की मानसिक और सामाजिक संरचना को भी तोड़ देता है।

अंतरराष्ट्रीय मानवीय कानून स्पष्ट रूप से कहता है कि युद्ध की स्थिति में भी नागरिकों, अस्पतालों और चिकित्सा कर्मियों की सुरक्षा सुनिश्चित की जानी चाहिए। घायल और बीमार लोगों को उपचार से वंचित करना किसी भी परिस्थिति में उचित नहीं माना जाता। लेकिन आधुनिक युद्धों में इन सिद्धांतों का लगातार उल्लंघन होता दिखाई दे रहा है। गाजा का संकट इसी विफलता का एक बड़ा उदाहरण है। संयुक्त राष्ट्र, विश्व स्वास्थ्य संगठन और अनेक मानवाधिकार संगठनों ने बार-बार चेतावनी दी कि यदि तत्काल मानवीय सहायता और चिकित्सा पहुंच सुनिश्चित नहीं की गई, तो स्थिति और भयावह हो सकती है।

यहां यह भी समझना आवश्यक है कि चिकित्सा व्यवस्था केवल अस्पतालों की इमारतों का नाम नहीं है। उसमें डॉक्टर, नर्स, एम्बुलेंस, दवाइयां, बिजली, स्वच्छ पानी, प्रयोगशालाएं, संचार व्यवस्था और सुरक्षित परिवहन सब शामिल होते हैं। गाजा में इन सभी स्तरों पर संकट मौजूद है। कई अस्पतालों को ईंधन न मिलने के कारण जनरेटर बंद करने पड़े। ऑपरेशन बिना पर्याप्त दवाइयों और एनेस्थीसिया के किए गए। डॉक्टरों को एक ही समय में सैकड़ों घायलों का इलाज करना पड़ा। अनेक स्वास्थ्यकर्मी स्वयं मारे गए या घायल हुए। ऐसी स्थिति में चिकित्सा व्यवस्था का चल पाना लगभग असंभव हो जाता है।

लेकिन इस पूरी त्रासदी का सबसे पीड़ादायक पहलू यह है कि सामान्य नागरिक सबसे अधिक प्रभावित हो रहे हैं। राजनीतिक नेतृत्व, सैन्य रणनीतियां और कूटनीतिक बयान अपने स्थान पर हैं, लेकिन उनके बीच एक सामान्य परिवार की पीड़ा कहीं खो जाती है। एक पिता जो अपने घायल बच्चे को अस्पताल तक ले जाने के लिए सुरक्षित रास्ता खोज रहा है, एक मां जो दवाइयों की तलाश में घंटों कतार में खड़ी है, या एक वृद्ध व्यक्ति जो डायलिसिस न मिलने के कारण धीरे-धीरे मृत्यु की ओर बढ़ रहा है — ये दृश्य किसी भी संवेदनशील समाज को विचलित करने के लिए पर्याप्त होने चाहिए।

इस संकट ने अंतरराष्ट्रीय राजनीति की सीमाओं और दोहरे मानदंडों को भी उजागर किया है। दुनिया के शक्तिशाली देश मानवाधिकार और लोकतंत्र की बातें तो करते हैं, लेकिन जब भू-राजनीतिक हित सामने आते हैं, तब मानवीय मूल्यों की आवाज कमजोर पड़ जाती है। गाजा को लेकर वैश्विक प्रतिक्रिया इसी विरोधाभास को सामने लाती है। कहीं युद्धविराम की अपील होती है, कहीं हथियारों की आपूर्ति जारी रहती है, कहीं मानवीय सहायता की बात की जाती है तो कहीं राजनीतिक समर्थन के कारण कठोर कदम उठाने से बचा जाता है। परिणाम यह होता है कि संकट लंबा खिंचता जाता है और आम नागरिक उसकी सबसे बड़ी कीमत चुकाते हैं।

आज आवश्यकता केवल सहायता भेजने या अस्थायी युद्धविराम की नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि अंतरराष्ट्रीय समुदाय चिकित्सा सहायता और नागरिक जीवन की सुरक्षा को राजनीतिक सौदेबाजी से ऊपर रखे। बीमार और घायल लोगों को उपचार का अधिकार मिलना चाहिए, सीमा मार्गों को मानवीय आधार पर खोला जाना चाहिए और स्वास्थ्य व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने के लिए गंभीर प्रयास किए जाने चाहिए। यह किसी एक पक्ष का समर्थन या विरोध करने का प्रश्न नहीं, बल्कि मनुष्यता के पक्ष में खड़े होने का प्रश्न है।

गाजा की त्रासदी हमें यह सोचने के लिए मजबूर करती है कि आधुनिक विश्व किस दिशा में जा रहा है। विज्ञान, तकनीक और वैश्विक विकास के इस दौर में यदि लाखों लोग दवाइयों, भोजन और उपचार के अभाव में मरने को मजबूर हों, तो यह केवल एक क्षेत्र की विफलता नहीं, बल्कि पूरी मानव सभ्यता की विफलता है। युद्ध की राख में दबे हुए बच्चे, अस्पतालों के बाहर इलाज की प्रतीक्षा करते मरीज और मलबों के बीच जीवन बचाने की कोशिश करते डॉक्टर हमें लगातार याद दिलाते हैं कि मनुष्य होने का अर्थ केवल शक्ति प्राप्त करना नहीं, बल्कि पीड़ा के प्रति संवेदनशील बने रहना भी है।

गाजा आज दुनिया के सामने एक नैतिक प्रश्न की तरह खड़ा है। प्रश्न यह नहीं कि कौन विजेता होगा, बल्कि यह कि क्या इस पूरी प्रक्रिया में मनुष्यता बची रह पाएगी। यदि दुनिया सचमुच शांति, मानवाधिकार और सभ्यता के मूल्यों में विश्वास करती है, तो उसे युद्ध और राजनीति से ऊपर उठकर उन लोगों की आवाज सुननी होगी जो केवल जीवित रहने का अधिकार मांग रहे हैं। ■

गाजा की तबाही यह समझने के लिए पर्याप्त है कि मानवता के समक्ष संकट कितना बड़ा है

Published Date 28 June, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

जंगल ही नहीं, असुरों की कलाओं पर भी संकट

खनन कंपनियों के दबाव में असुर आदिवासी जंगलों पर अपना नियंत्रण खोते गए हैं, जिससे उनकी जीवन शैली और पारंपरिक शिल्प भी खोते जा रहे हैं

घुंघू मालू की पत्तियों से बना एक गुंबदनुमा छाता होता है, जो न सिर्फ बारिश से बचाता है बल्कि इसे पहनकर आकाशीय बिजली से भी बचा जा सकता है। इसे बनाने वाली नैहरी असुर, सुखनी असुर, टाकी असुर और निधि असुर अपने घुंघू के साथ

झारखंड के गुमला जिले के कुजाम गांव की रहने वाली सुखनी असुर कहती हैं, "अगर घुंघू पहनकर जंगल जाओ, तो कभी आप पर बिजली नहीं गिरेगी।" घुंघू एक तरह का छाता है, जिसे मालू (फनेरा वाहली) नाम के पौधे की पत्तियों से बनाया जाता है। यह बेल इस इलाके में आमतौर पर पाई जाती है।

घुंघू का इस्तेमाल पूरे साल किया जाता है। गर्मियों में यह लू से बचाता है, सर्दियों में ठंडी हवा से और बरसात में बारिश से। इसकी सबसे बड़ी खासियत यह है कि गुंबद जैसे आकार के घुंघू को सिर पर रखने के बाद, दोनों हाथ काम करने के लिए खाली रहते हैं।

सुखनी (56) ने बचपन में अपनी मां से घुंघू बनाना सीखा था। वह बताती हैं, "पहले हर कोई जंगल से मालू की पत्तियां लाकर घुंघू बनाता था। लेकिन अब बहुत कम लोग इसका इस्तेमाल करते हैं और उससे भी कम लोग इसे बनाते हैं।"

सुखनी, असुर समुदाय से हैं, जिसे झारखंड में विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (पीवीटीजी) के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। उनका परिवार अपनी 10 एकड़ जमीन पर खेती करता है, जहां मुख्य रूप से धान, मक्का और गुंडली (कुटकी) उगाई जाती है।

सुखनी का तीन कमरों वाला मिट्टी का घर बिशुनपुर वन क्षेत्र से महज 500 मीटर की दूरी पर है, जिसमें उनके परिवार के 12 सदस्य रहते हैं। कुजाम के निवासी जलावन लकड़ियों, फल, चरागाह और अन्य जरूरतों के लिए इसी जंगल पर निर्भर रहे हैं। सुखनी कहती हैं, "हमरा रोजी-रोटी सब यही है।"

गुमला जिले के कई गांवों (इनमें कुजाम के आसपास के इलाके भी शामिल हैं) में हो रहे लाल बॉक्साइट खनन ने वहां जीवन-व्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित किया है। चरागाह लगातार सिकुड़ रहे हैं। ग्रामीणों का कहना है कि खनन के लिए खोदे गए गहरे गड्ढों में गिरकर मवेशियों की मौत तक हो जाती है। सुखनी कहती हैं, "जलस्तर इतना नीचे चला गया है कि गर्मियों में महिलाओं को पीने का पानी लाने के लिए कई किलोमीटर दूर जाना पड़ता है।" जब यह संवाददाता गांव पहुंचा, दूर कहीं बॉक्साइट निकालने में लगी भारी मशीनों की आवाज लगातार सुनाई दे रही थी। ड्रिलिंग, विस्फोट, लोडिंग और ढुलाई का काम बिना रुके जारी था।

सुखनी कहती हैं, "पहले साल के पेड़ इतने मोटे होते थे कि अगर उनके पीछे दो आदमी खड़े हो जाएं, तो दिखाई नहीं देते थे। अब देखिए, हर जगह खुदाई हो चुकी है।" वह आगे कहती हैं, "हमारे मवेशियों के चरने तक की जगह नहीं बची है। पहले जंगल में बहुत-से जंगली जानवर हुआ करते थे, लेकिन खदानों में होने वाले विस्फोटों के कारण वे सब गायब हो गए हैं।"

*

सुखनी और उनके पड़ोसी बिशुनपुर वन क्षेत्र के घने हिस्सों तक पहुंचने के लिए रोज 10 से 12 किलोमीटर पैदल चलते हैं।

सुखनी कहती हैं, "जब हमारे मवेशी और बकरियां चरते हैं, हम घुंघू के लिए पत्तियां इकट्ठा करते हैं।" उनके परिवार के पास लगभग एक दर्जन पशु हैं, जिन्हें वे त्योहारों के समय या आर्थिक तंगी होने पर बेच देते हैं। इन्हें बेचने के लिए सुखनी अपने गांव से पांच किलोमीटर दूर जोभीपाठ हाट जाती हैं। पिछले वर्ष उन्होंने इससे लगभग 25,000 रुपये कमाए थे।

सुखनी बताती हैं, "एक वयस्क व्यक्ति के उपयोग लायक घुंघू बनाने में 1,000 से 2,000 पत्तियां लगती हैं और इसे तैयार करने में दो से तीन दिन का समय।" वह आगे कहती हैं, "हम आमतौर पर नीचे की वे पत्तियां तोड़ते हैं जिनमें लंबा डंठल लगा हो। लेकिन अगर अच्छी पत्तियां ऊपर हों, तो पेड़ पर भी चढ़ जाते हैं।"

मालू की बेल एक सदाबहार लता है, जिसकी पत्तियों से घुंघू बनाया जाता है। इसकी लंबाई 10 से 30 मीटर तक हो सकती है और यह कई बार पेड़ों की चोटी तक पहुंच जाती है। घुंघू बनाने में इस्तेमाल होने वाली हर पत्ती चौड़ी होती है और दो गोल हिस्सों में बंटी होती है।

घुंघू बनाने के लिए सुखनी लंबे डंठल वाली पत्तियों को परत-दर-परत सजाती हैं। वह समझाती हैं, "जैसे हम लोग मिट्टी के घर में खपड़ा को सजाते हैं न, वैसे ही पत्ता को सजाया जाता है।" पत्तियों का मुलायम हिस्सा अंदर की ओर रखा जाता है और डंठल की मदद से एक पत्ती को दूसरी पत्ती से जोड़ा जाता है।

जब ये गुंबदनुमा बन जाता है, तो उस प्रक्रिया को दोहराकर ऐसी कई परतें बनाई जाती हैं, ताकि घुंघू मजबूत हो जाए। समय के साथ हरी पत्तियां सूखकर हल्की हो जाती हैं।

घुंघू सुखनी के सिर से लेकर घुटनों तक ढका रहता है और उन्हें हर तरफ से सुरक्षा देता है। सुखनी कहती हैं, "आजकल हर किसी के पास रंग-बिरंगे प्लास्टिक के छाते हैं, घुंघू नहीं।"

वह बताती हैं, "पहले एक घुंघू के बदले तीन पइला धान मिलता था।" पइला, एल्युमिनियम का एक बर्तन होता है, जिसका इस्तेमाल इस इलाके में नाप के लिए किया जाता है। इसमें लगभग एक किलो धान आता है। यानी तीन पइला धान से करीब एक किलो चावल निकलता था। यह बात 30 साल से भी ज्यादा पुरानी है।

सुखनी की पड़ोसी और सखी सुमन असुर (62) कहती हैं, "उस समय हमारे पास खाने को कुछ नहीं होता था और हम दो-तीन दिन तक सिर्फ एक समय का खाना खाकर गुजारा करते थे।" वह 1980 के दशक के उस सूखे की बात कर रही हैं, जिनके कारण इलाके में गंभीर खाद्य संकट पैदा हो गया था। तब महिलाएं घुंघू जैसी रोजमर्रा की चीजें बनाकर पड़ोसी गांवों में बेचती और उसी से घर चलाती थीं। तब भी और आज भी, जंगल असुर समुदाय के अस्तित्व के लिए बेहद महत्वपूर्ण रहा है।

सुखनी कहती हैं, "हमें जंगल से ही सबकुछ मिलता है - भोजन, जलावन की लकड़ियां, लोहा गलाने को कोयला और घुंघू के लिए पत्तियां।" वह आगे कहती हैं, "हमारे देवी-देवता भी जंगल में ही रहते हैं।" करमा और सरहुल जैसे त्योहारों पर वे धरती की पूजा करते हैं।

सुखनी कहती हैं, "हम मालू की पत्तियों से पोटांग भी बनाते हैं।" पोटांग गोल तली वाला एक पात्र होता है, जिसमें अनाज, बीज और फूल रखे जाते हैं। वह बताती हैं, "इन पत्तियों को 20 साल तक भी रख दो, इनमें कीड़े नहीं लगते।"

नए साल के आगमन का उत्सव माने जाने वाले सरहुल पर्व के दौरान पोटांग में नई फसल का चावल भरा जाता है। सुखनी बताती हैं, "हम इसे सिर पर रखकर नाचते हैं।"

*

सुखनी के पति 61 वर्षीय बंधुआ असुर कहते हैं, "असुरों का बनाया गया लोहा कभी जंग नहीं खाता।" उनके हाथ में एक लोहे का हथौड़ा है, जिस पर जंग का एक भी निशान नहीं है। उनका दावा है कि यह कम से कम 200-300 साल पुराना है।

असुर पारंपरिक रूप से धातु गलाने का काम करते रहे हैं। वे खेती के लिए कुदारी (फावड़ा), टांगी (कुल्हाड़ी) और फार (हल का फाल) बनाते थे। वहीं घरेलू उपयोग के लिए पौसुल (पहसुल), हसुआ (दरांती) और तीर भी तैयार करते थे।

बंधुआ कहते हैं, "टांगीनाथ धाम जाइए। वहां जो फरसा है, उसे असुरों ने ही बनाया था।" वह पास के प्रसिद्ध मंदिर का जिक्र कर रहे हैं, जहां एक प्राचीन फरसा जमीन में गड़ा हुआ है और आज तक उस पर जंग नहीं लगी है। बंधुआ कहते हैं, "लेकिन जबसे जंगल पर वन विभाग का नियंत्रण हुआ है, हमारे सारे शिल्प धीरे-धीरे खत्म हो गए हैं।"

साल 1980 के वन संरक्षण अधिनियम ने साल के पेड़ों की कटाई पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया। असुर समुदाय साल की लकड़ी से बने कोयले का उपयोग भट्टियों में ईंधन के रूप में करता था, जिनमें इस क्षेत्र में मिलने वाले अयस्क से लोहा निकाला जाता था।

सुखनी अपनी कमर तक हाथ ले जाकर बताती हैं, "भट्टी मिट्टी की बनी होती है और लगभग इतनी ऊंची होती है।" भट्टी के भीतर दोनों ओर शंकु जैसी आकृति बनाई जाती है, ताकि गर्मी लौह अयस्क पर केन्द्रित रहे। आग जलाने और उसे बनाए रखने के लिए पैरों से चलने वाली धौंकनी का इस्तेमाल किया जाता है।

लेकिन पिछले कुछ दशकों में ये भट्टियां बुझ गई हैं। स्थानीय स्तर पर लोहा बनना बंद हो जाने के साथ ही असुरों के बीच से लोहे के औजार बनाने की कला भी धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। बंधुआ कहते हैं, "सरकार हम लोग को बोला कि आप जंगल नहीं काट सकते हैं, फिर सारा जंगल माइनिंग कंपनी को दे दिया।"

समय के साथ असुर समुदाय ने खेती को अपना लिया, लेकिन पाट क्षेत्र में खेती भी स्थिर आय की गारंटी नहीं देती। सुखनी कहती हैं, "यहां पानी बहुत कम है। इसलिए हम साल में केवल एक बार खेती कर पाते हैं।" वह आगे कहती हैं, "खनन हमारे पास मौजूद थोड़ा-बहुत पानी भी छीन लेता है।"

कुजाम के कई निवासियों ने मजदूरी का काम पाने के बदले अपनी कृषि भूमि खनन कंपनियों को पट्टे पर दे दी है या बेच दी है। बंधुआ भी पास की खदानों में दिहाड़ी मजदूर के रूप में काम करते हैं। जिस दिन काम मिल जाता है, उस दिन उन्हें लगभग 350 रुपये की मजदूरी मिलती है।

*

सुखनी कहती हैं, "जहां कहीं भी असुर शिल्प की बात होती है, हम चारों पहुंच जाते हैं।" वह अपने शिल्प को लेकर हर मेले में पहुंचती हैं, चाहे वह सरकार द्वारा आयोजित मेला हो या गैर-सरकारी संगठनों द्वारा आयोजित। अक्सर उनके साथ उनकी पड़ोसी नैहरी असुर (60), निधि असुर (70) और टाकी असुर (75) भी होती हैं।

पिछले वर्ष अपनी बेटी की मृत्यु के बाद सुखनी का संकल्प और मजबूत हो गया है कि वह अपने समुदाय की दूसरी युवा महिलाओं को यह शिल्प जरूर सिखाएंगी। वह कहती हैं, "मैं अपनी बेटी को यह नहीं सिखा पाई, लेकिन अपनी बाकी सभी बेटियों को अपनी विरासत जरूर देकर जाऊंगी।"

असुर समुदाय के कुछ प्रभावशाली लोग उनके शिल्प को कमतर साबित करने की कोशिश करते हैं और उसे 'नकली' कहकर खारिज कर देते हैं। उनका दावा है कि वे अपने शिल्प में न तो पर्याप्त रूप से निपुण हैं और न ही उसकी कोई प्रामाणिकता है। कई बार सुखनी और उनकी सहेलियों को शिल्प मेलों में ले जाया जाता है, लेकिन उन्हें कोई भुगतान नहीं होता। सुखनी थोड़ी चुनौती भरे अंदाज में कहती हैं, "लेकिन हमें इसकी परवाह नहीं है। यह हमारा शिल्प है।" ■

यह स्टोरी मृणालिनी मुखर्जी फाउंडेशन (एमएमएफ) की फेलोशिप के सहयोग से तैयार की गई है। साभारः ruralindiaonline.org

अयस्क से लोहा निकालने के बाद बचा हुआ अवशेष कुछ ऐसा दिखता है। पुराने एक पैसे के सिक्कों से बना हार है, जिस पर किंग जॉर्ज षष्ठम की तस्वीर अंकित है। सुखनी को यह हार उनकी मां ने शादी पर बनाकर दिया था

वन संरक्षण अधिनियम ने साल वृक्षों की कटाई प्रतिबंधित कर दी, जिसके कोयले का इस्तेमाल अयस्क से लोहा निकालने वाली भट्टियों में होता था। लेकिन अब ये भट्टियां बुझ गई हैं

Nehru centre

नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम

वेस्टर्न एक्सप्रेसवे पर
मुंबई के हृदयस्थल में,
बीकेसी से सटे,
एयरपोर्ट के पास

इन सबके लिए सर्वोत्तमः
- कॉरपोरेट/एचआर मीटिंग, सेमिनार या ट्रेनिंग सेशंस
- व्याख्यान
- बुक लॉन्च/ बुक रीडिंग
- पैनल डिस्कशन
- साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रम

ऑडिटोरियम उपलब्ध है
-पूरा दिन सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे
-आधा दिन सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे या शाम 4 बजे से शाम 8 बजे

बुकिंग के लिए कृपया संपर्क करें: +91 22-26470102, 8482925258
या हमें लिखें: contact@nehrucentre.com
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम, दूसरा फ्लोर, एजेएल हाउस, 608/1ए, प्लॉट नं. 2, एस. नं. 341, पीएफ ऑफिस के पास, बांद्रा, मुंबई- 400051